बबूल की महक

शिक्षक दिवस १९८५

शिक्षा विभाग राजस्थान
के लिए

सुरभीत प्रकाशन
बीकानेर

सम्पादक :
मस्तराम कपूर
बबूल की
महक

आमुख

शिक्षक दिवस १९८५, याने प्रदेश के अध्यापकों की साहित्यिक, वैचारिक एवं सृजनात्मक सम्भावनाओं से भरा एक वर्ष और !

मुझे खुशी है कि हमारे शिक्षक अपने विषयाध्यापन के साथ-साथ साहित्यिक लेखन के माध्यम से भी अपनी रचनाधर्मिता का सबूत दे रहे हैं। पढ़ाना अपने आप मे ऊँचे स्तर का सृजनात्मक कर्म है। एक शिक्षक को भी उसी सृजन-पीड़ा के दौर से गुजरना पड़ता है, जिसे एक साहित्यकार अनुभव करता है। वस्तुत शब्द दोनो ओर है। बस, माध्यम जुदा-जुदा हैं। फिर भी सृजन के एक दौर को जीने वाला शिक्षक, उस दूसरे दौर को भी बखूबी जीता आया है, जिसमे वाणी नहीं, लेखनी का आश्रय लेना पड़ता है। इस नाते राजस्थान के शिक्षक-साहित्यकार पिछले उन्नीस वर्षों से अपनी दोहरी चेतना का प्रमाण देते आए हैं।

बात को थोड़ा और स्पष्ट कर दूं। प्रदेश के शिक्षक-साहित्यकारो को प्रकाशन-प्रोत्साहन देने का जो सिलसिला सन् १९६७ मे शिक्षा विभाग ने शुरू किया था, वह शिक्षको की अब तक प्रकाशित ६१ कृतियो के बावजूद इस वर्ष भी अबाध रूप से जारी रहा है। बेशक, इसका श्रेय शिक्षक साहित्यकारो को ही है, जो हर साल विविध विधाओ मे नित नया सृजन करते हैं—ऐसा सृजन कि जिसकी देश-प्रदेश की साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओ द्वारा हर साल प्रशंसा होती रही है।

इस वर्ष की निम्न कृतियो के साथ मैं आपके हाथो मे एक और दस्तावेजी सैट प्रस्तुत कर रहा हूं, जिसे देश के ख्यातिनाम साहित्यकारों ने संपादित किया है, उनकी गुणवत्ता और सीमाओं पर अपनी प्रतिक्रियाए दर्ज की हैं। कृतिया ये हैं—

(१) रास्ते अपने-अपने (कहानी-संग्रह)—सं. राजेन्द्र अवस्थी

(२) सुनो ओ नदी रेत की (कविता-संग्रह)—सं. बलदेव वंशी

(३) बबूल की महक (बाल-साहित्य)—सं. मस्तराम कपूर

(४) मरु अचल के फूल (हिन्दी विविधा)—सं. कमलकिशोर गोयनका

(५) माणक चोक (राजस्थानी विविधा)—सं. मनोहर शर्मा

शिक्षकों की बहुत सारी रचनाएं इन संकलनों में आने से रह गई हैं। इसका यह अर्थ न लिया जाय कि रचना के स्तर पर इनमें कहीं कोई कमी थी, या वे निम्न स्तर की थीं। यदि पुस्तकों की पृष्ठ-संख्या को हम और बढ़ा पाते, तो बेशक कई समर्थ रचनाकार इनमें और स्थान पा सकते थे। पर यह हमारी सीमा थी। मुझे उम्मीद है वे तमाम रचनाकार आगामी वर्ष भी अपनी रचनाएं अवश्य भेजेंगे।

इन कृतियों को प्रकाशित, मुद्रित करने के लिए प्रकाशक के प्रति मैं आभार व्यक्त करना चाहूंगा, जिन्होंने समय की कमी के बावजूद निर्धारित अवधि पर इन्हें प्रकाशित कर दिया। देश के ख्यातिनाम उन संपादकों को भी मैं धन्यवाद देना नहीं भूलूंगा, जिन्होंने शिक्षकों की ढेर-सारी रचनाओं को पढ़ा, उन्हें सराहा, उनकी गुणवत्ता पर विद्वत्तापूर्ण भूमिका लिखकर मार्गदर्शन प्रदान किया।

मेरा विश्वास है कि शिक्षा विभाग राजस्थान की यह परम्परा तो आगे बढ़ेगी ही, अन्य राज्यों द्वारा भी इस ओर पहल की जाएगी।

(बी० पी० आर्य)
निदेशक,
प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा,
राजस्थान, बीकानेर

प्रस्तावना

यदि शिक्षा का लक्ष्य, जैसा कि महात्मा गांधी ने कहा था, बच्चे की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों को जाग्रत करना है, तो शिक्षा और साहित्य मे परस्पर विरोध नहीं होना चाहिए। लेकिन दुर्भाग्य से जो शिक्षा प्रणाली हमे मिली है, वह महात्मा गांधी की परिभाषा से बहुत दूर है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली बच्चे मे कुछ अनगढ जानकारी ठूसने का प्रयास मात्र है और इसलिए बच्चो के साहित्य तथा बच्चों की शिक्षा के बीच तीन और छह के अंको का रिश्ता हो गया है। शिक्षा बच्चे की सृजन-शक्तियो को काम करने का मौका नही देती और साहित्य की पहली शर्त सृजन-शक्तियो को पहचानना और उन्हे काम मे लाना है।

इस विरोधाभास के कारण एक शिक्षक से अच्छे बाल-साहित्य की रचना की अपेक्षा सामान्यतया नहीं की जा सकती, उसी तरह जैसे बच्चो की समस्याओ से रात-दिन घिरी रहने वाली मां से अच्छे बाल-साहित्य की अपेक्षा नही की जा सकती। दोनो के मन मे यह विचार बराबर काम करता है कि बच्चा नासमझ है, कमजोर है, दया और सहायता का पात्र है और उनकी कोशिश रहती है कि बच्चे को जल्दी से जल्दी बुद्धिमान और वयस्क बनाया जाय। हिन्दी का अधिकांश बाल-साहित्य इसी प्रयास का फल है।

लेकिन इसका यह अर्थ नही कि शिक्षक और माताए बाल-साहित्य लिख ही नही सकते। बहुत-से शिक्षकों और बहुत-सी माताओ ने बाल-साहित्य लिखा है। ऐसा तभी हुआ है जब उन्होंने शिक्षक अथवा मां की मन स्थिति से ऊपर उठकर रचना की है। यह बात सभी प्रकार के साहित्य-लेखन पर लागू होती है। संयोगवश मिली परिस्थितियों से उत्पन्न मानसिकता से ऊपर उठे बिना किसी भी प्रकार का सृजन नही हो सकता।

प्रसन्नता की बात है कि राजस्थान सरकार का शिक्षा विभाग अध्यापको की सृजनशीलता को बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील रहता है। वस्तुत शिक्षा सम्बन्धी अभिनव प्रयोगों मे राजस्थान के शिक्षा विभाग ने सभी राज्यों के लिए उदाहरण प्रस्तुत किया है। न केवल "शिविरा" और "नया शिक्षक" जैसी उच्च स्तरीय पत्रिकाओ के प्रकाशन द्वारा अपितु अध्यापकों की साहित्यिक रचनाओं के वार्षिक संकलनो के प्रकाशन द्वारा भी यह अध्यापकों को ऐसे अवसर जुटाता है, जिसमें वे पाठ्यक्रम की जकड से मुक्त होकर अपनी सृजनशीलता का परिष्कार करते रहें।

इस शिक्षक-दिवस पर प्रकाश्य बाल-साहित्य के प्रस्तुत संकलन "बबूल की महक" से

डॉ० मस्तराम कपूर

जन्म : २६ दिसम्बर, १९२६ (हिमाचल प्रदेश) रचनाएँ उपन्यास—विपथ-गामी, एक अटूट सिलसिला, तीसरी आँख का दर्द, नाक का डॉक्टर, रास्ता बन्द काम चालू। कहानी-संग्रह—एक अदद औरत, ग्यारह पत्ते। नाटक—पत्नी ऑन ट्रायल। चिन्तन-प्रधान—हम सब गुनाहगार। बाल-उपन्यास—नोह और हीह, भूतनाथ, सुनहरा मेमना, मौरे की लड़की। बाल कहानी संग्रह—किशोर जीवन की कहानियां (दो भाग), निर्भयता का वरदान, दड का पुरस्कार, आज्ञा-होज़ा, सहेली, चोर की तलाश, ऐंगा-बैंगा, बेजुबान साथी। बाल नाटक—बच्चों के नाटक, बच्चो के एकाकी, पांच बाल-नाटक, स्पर्धा।

१९६८ मे सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर (गुजरात) से "बाल साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन" विषय पर पी-एच० डी० की। दिल्ली (मासिक), प्रतिपक्ष (साप्ताहिक), "बच्चे और हम", "रासमो मजाक", "होमट" (अंग्रेजी मासिक) पत्रों का सपादन।

यह बात भली भाँति प्रमाणित होती है कि अवसर, प्रोत्साहन और प्रेरणा मिलने पर प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सृजनशीलता बनाए रखी जा सकती है। सृजन मानव की सर्वोत्तम क्रिया है, जो जीवन की सम्पूर्णता का अहसास कराती है। अतः नैसर्गिक रूप से प्रत्येक व्यक्ति सृजनशील होता है। केवल परिस्थितियाँ अधिकांश व्यक्तियों की सृजनशीलता पर अंकुश लगाए रखती हैं।

"बबूल की महक" में बहुत-से जाने-पहचाने और प्रसिद्ध नाम हैं। कुछ अपरिचित नाम भी हैं। लेकिन सधी हुई लेखनी का आभास सभी रचनाओं में मिलता है। जहाँ तक कहानियों का सवाल है, मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि अधिकांश लेखकों ने बच्चों के प्रत्यक्ष जीवन से प्रसंग चुनकर यथार्थ साहित्य के प्रति अपना अधिमान प्रकट किया है। परियों, भूत-प्रेतों और राजा-रानियों की कहानियों की अधिकता से हिन्दी के बाल-साहित्य का सन्तुलन बिगड़ गया है, उसे सही दिशा देने में यह पुस्तक सहायक होगी। मुझे लगता है कि यथार्थ कहानियों के लेखन की दृष्टि से (जिसकी कमी बाल-साहित्य में हमेशा खटकती रही है) प्रस्तुत संकलन का विशेष महत्त्व है।

बाल-गीतों में भी कुछ बँधी-बँधाई लीकों को तोड़ने का प्रयास दिखाई देता। 'चिड़िया बोली चूं-चूं और कौआ बोला काँव-काँव' की सरल परिपाटी से कहीं बहुत आगे जाकर शिशु गीतों में विविध प्रकार के छंदों, रंगों और उमगों की अभिव्यक्ति हुई है, जो निश्चय ही उत्साहवर्द्धक है।

कभी-कभी हम अपनी वयस्क स्थिति को चाहते हुए भी नहीं भूल पाते हैं और शिक्षा तथा नैतिकता का आग्रह अनजाने ही रचना में आ जाता है। प्रस्तुत कहानियों में से कुछ में ऐसा हुआ है। 'भिण्डी-भू' कहानी बहुत सुन्दर है लेकिन हिन्दू-मुस्लिम एकता के भाव पर जोर देने का प्रयास स्पष्ट है। यदि इस प्रयोजन के लिए दिए गए विवरणों को हटा दिया जाय तो कहानी स्वयं यह सन्देश देने लगती है। 'फूलों का गुलदस्ता' कहानी में भी शिष्टाचार की शिक्षा के प्रयोजन से कुछ संवाद थे जो निरर्थक लगते थे। 'बुढ़िया चाँद वाली' का मिथक इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, किन्तु बुढ़िया और लकड़ी का रिश्ता अपने में एक रोचक कहानी है। 'नया रवि' और 'अमित की हँसी' में प्रायश्चित्त पर बहुत जोर दिया गया है, विशेषकर 'अमित की हँसी' में हँसने की सजा कुछ जरूरत से ज्यादा लगी, अतः कुछ संशोधन करने की आवश्यकता पड़ी। 'दैत्य क्रुद्धदेव' नीति कथा का नया प्रयोग है। कहानी का कलेवर जरूर बढ़ गया है (नीति कथा जितनी छोटी हो उतनी पैनी होती है), किन्तु नव-प्रयोग के कारण इसे ज्यों का त्यों रहने दिया गया है। 'सूरज की सूझ' और 'हाथी की कर्त्तव्य परायणता' कहानियों में साहस, सूझबूझ और संवेदना के तत्त्वों ने आकर्षण ला दिया है।

पुस्तक-पृष्ठों की सीमा के कारण सम्भव है, कई अच्छी रचनाएं इस संकलन से छूट गई हों लेकिन जहाँ तक सम्भव हुआ है, मैंने सभी समर्थवान लेखकों को इसमें समाहित करने का प्रयास किया है।

७६-बी०, पॉकेट-३
मयूरविहार
दिल्ली-११००६१

डॉ० मस्तराम कपूर

जन्म : २६ दिसम्बर, १९२६ (हिमाचल प्रदेश) रचनाएँ . उपन्यास—विपथगामी, एक अटूट सिलसिला, तीसरी आँख का दर्द, नाक का डॉक्टर, रास्ता बन्द काम चालू। कहानी-संग्रह—एक अदद औरत, ग्यारह पत्ते। नाटक—पत्नी ऑन ट्रायल। चिन्तन-प्रधान—हम सब गुनाहगार। बाल-उपन्यास—नीरू और हीरू, भूतनाथ, सुनहरा मेमना, सँपेरे की लड़की। बाल कहानी संग्रह—किशोर जीवन की कहानिया (दो भाग), निर्भयता का वरदान, दड का पुरस्कार, आजा-होजा, सहेली, चोर की तलाश, ऐंगा-वैंगा, बेजुबान साथी। बाल नाटक—बच्चो के नाटक, बच्चो के एकाकी, पाच बाल-नाटक, स्पर्धा।

१९६८ में सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर (गुजरात) से "बाल साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन" विषय पर पी-एच० डी० की। दिल्ली (मासिक), प्रतिपक्ष (साप्ताहिक), "बच्चे और हम", "रासलो सवाद", "हौजट" (अंग्रेजी मासिक) पत्रो का सपादन।

अनुक्रम

कहानी

प्रेरक प्रसंग

कविता

भिण्डी-भू

कृष्णकुमार कौशिक

अमलम और अरविन्द की दोस्ती को कोई ज्यादा समय नही हुआ था। असलम तो इसी शहर का रहने वाला था। उसके पिता ठेकेदार है। अरविन्द के पिता जिला जन-सम्पर्क अधिकारी के पद पर दो वर्ष पूर्व ही स्थानान्तरित होकर आये थे। दोनों सातवी के विद्यार्थी थे और आपस मे खूब पटती थी। पढाई मे तेज थे, खेल के शौकीन। हर बात मे एक-से। दोपहर का नाश्ता तक साथ बैठकर करते।

एक दिन शाम को, स्कूल के खेल-मैदान मे लडके कुश्ती कर रहे थे। जब भी कोई चित होता, आसमान तालियो और सीटियो की आवाजो से गूज उठता। इब्राहिम और रमेश ने कुश्ती लड़ी। दर्शनसिह और सुभाषदास ने, राम और नरेन्द्र ने, राकेश और नीलाभ ने तथा इसी प्रकार कई जोड़ों ने कुश्ती लड़ी। एक कुश्ती पूरी होती तब तक दूसरा जोडा आतुर हो जाता।

रमेश ने असलम से कहा, "क्यो मिया ! तुम नही लड़ोगे कुश्ती ?"

"कौन लडेगा मेरे साथ ?" असलम ने जांघ पर ताल ठोककर पूछा।

नीलाभ ने अरविन्द की पीठ ठोकी, "भिड़जा पडित ! मौलवी से।"

"नही, अरविन्द से कुश्ती नही लड़ूंगा।" असलम के मन में प्यार उमड़ रहा था।

"हो गई भिण्डी-भू, नाम सुनते ही।" रमेश ने ताना कस दिया।

"यह बात नही है।" असलम ने सफाई देनी चाही।

"तो क्या बात है ?" कई स्वर एक साथ फूटे।

"असलम कुछ बोले, इससे पहले ही रमेश ने नारे बाजी शुरू कर दी "असलम को !"

सभी चिल्लाये, "भिण्डी भू"

भिण्डी—

बैठ गया। असलम दबोचने झुका कि अरविन्द ने टाग पकड़ ली। असलम ने पीछे से हाफ पैण्ट में हाथ डालकर उठाना चाहा कि अरविन्द ने गुलाचों मारी और तभी असलम धडाम से चित। तालियों और सीटियों की आवाजों से वातावरण गूज गया।

"असलम की !" "भिण्डी—भू"

"असलम की !" "भिण्डी—भू"

"असलम की !" "भिण्डी—भू"

सभी पुरजोर आवाज में बोल रहे थे। दर्शनसिंह ने अरविन्द को कंधों पर उठा लिया था। शाम का धुंधलका शुरू हो चुका था। बीस-बाईस लड़कों का दल, नारे लगाता सड़क की ओर बढ़ने लगा। वे अरविन्द की जिन्दाबाद और असलम की भिण्डी—भू बोल रहे थे। किसी को भी ध्यान नहीं रहा कि असलम अखाड़े में अकेला खड़ा, डब-डबाई आंखों से आसमान में छा रहे अंधेरे को ताक रहा है। उसने मुँह के अंदर नमक कड़वाहट को थूका और घर की तरफ चल दिया।

अगले दिन, जो भी लड़का चुपचाप असलम की ओर देखता, उसे "भिण्डी—भूं" कहता हुआ लगता। अरविन्द ने असलम से कुछ कहना चाहा पर उसका उदास चेहरा और फटी-सी आंखें देखकर, जीभ तालू से चिपक गई। चाह कर भी कुछ न बोल पाया, चुपचाप पास से निकल गया। असलम को लगा कि अरविन्द भी उसे "भिन्डी—भूं" कह गया।

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, मनमुटाव की खाई अधिक चौड़ी होती गई।

अरविन्द का जन्मदिन आया। सुबह से ही तैयारियां हो रही थीं। असलम को भी पता था कि आज अरविन्द का जन्मदिन है। न तो उसका पढ़ाई मे मन लग रहा था, ना ही खेल में। हर बात में खीझ और हर किसी से झगड़ा। आखिर मां ने पूछ ही लिया, "क्यों रे असलम ! बात क्या है ?"

"कुछ नहीं।"

"कुछ तो है, तूं छुपाता है।"

"ऐसे ही······कुछ नही है।"

"मैं तेरी मां हूं, क्या इतना भी नही जानती ?"

"वो······वो आज अरविन्द का जन्मदिन है।"

"अरे ! तेरे दोस्त का जन्मदिन है और तू अभी यही बैठा है ?"

"वो······उस दिन······कुश्ती······" असलम का गला भर आया था, वह आगे कुछ न बोल सका।

"तो क्या हुआ ? कुश्ती तो दोस्तों में ही होती है, दुश्मनों में थोड़े ही होती है ? दुश्मनों में तो युद्ध होता है। तुमने युद्ध तो नहीं लड़ा ?"

"वो कुश्ती···युद्ध ही···हो गई थी। उसने मुझे निमन्त्रण भी नहीं भेजा।"

"नहीं बेटे, ऐसे नही रूठते। वह खुद आकर मुझे कह गया था कि, असलम को जरूर भेज देना।" मां ने प्यार से समझाया।

"सच ?" असलम को विश्वास नहीं हो रहा था।

"अल्लाह-कसम।" मां ने विश्वास दिलाया।

अरविन्द की आत्मा वास्तव में पुकार-पुकार कर निमन्त्रण दे रही थी। सहपाठी

मेहमानों की भीड में असलम नही दिखायी दे रहा था। वह उदास-उदास-सा इधर-उधर मुंह छिपाता फिर रहा था। मां ने भांप लिया कि जरूर दाल में कुछ काला है। "क्यों अरविन्द, बात क्या है ?" उसकी मां ने पूछा।

"कुछ नही।"

"तो यह उदासी क्यों ?"

"वो ऐसा है कि उस कुश्ती के बाद ·· ··।" अरविन्द रुआसा हो गया।

"कैसा दोस्त है तू उसका, जा अभी बुलाकर ला उसे।" मा ने साधिकार कहा।

अरविन्द, असलम के घर की ओर चल पड़ा। रास्ते मे असलम, उधर ही आता दिखायी पड़ा। दोनों ने एक दूसरे को देखा। दोनो की चाल धीमी हो गयी। धीरे-धीरे एक-दूसरे के नजदीक आते दिखायी दिए। जब एकदम पास आ गये तो दोनो एक दूसरे को घूर रहे थे। मानो अभी फिर कुश्ती शुरू करने वाले हैं कि एक साथ दोनो झपटे और एक-दूसरे से लिपट गये। आखे छलछला आयी थी।

"असलम !"

"अरविन्द !"

"आज मेरा · ···।"

"हा, मुझे मालूम है।"

"यह क्या है ?"

"तेरे लिए प्रेजेंट।"

दोनों की आखो से आसू बह रहे थे। अरविन्द ने कहा, "असलम ! आज मेरी भी भिण्डी—भूं।"

"नही अरविन्द ! आज हम दोनों की भिण्डी-भूं" और असलम हंस पड़ा। लेकिन इस हँसी मे दोनो की आखो से आसू बहने लगे।

□

फूलों का गुलदस्ता

सत्य शकुन

जुगल बड़ा परिश्रमी लड़का था। अपने शान्त और मधुर व्यवहार के कारण वह घर, स्कूल और आस-पड़ोस में सब का चहेता था। कक्षा की पढ़ाई-लिखाई में तो वह तेज था ही पर स्कूल के दूसरे कार्यक्रमों में भी आगे बढ़कर हिस्सा लेता था।

रोज की तरह कक्षाएं चल रही थीं। चपरासी ने आकर एक चिट अध्यापकजी को पकड़ा दी। अध्यापकजी चिट पढ़कर बोले—'जुगल, तुम इस पीरियड के बाद हैडमास्टर साहब से मिल लेना।' अध्यापकजी ने फिर से पढ़ाना शुरू कर दिया। घंटी लगी···आधी छुट्टी हो गई थी। जुगल प्रधानाध्यापक जी से मिलने गया। प्रधानाध्यापक जी ने उसे प्रेम से अपने पास की कुर्सी पर बैठने का इशारा किया। और बोले—

'बेटे! तुम्हें कल प्रातः दस बजे टाउन हॉल पहुंचना है। राज्य स्तरीय वाद-विवाद प्रतियोगिता है और तुम्हे उसमें हिस्सा लेना है। विषय तुम्हें बता दिया गया था। मुझे पूरी आशा है कि तुम स्कूल का नाम ऊंचा करोगे।'

'सर, मुझे ध्यान था और मैंने पूरी तैयारी कर ली है। आप चिन्ता न करें। मुझे पूरी आशा है कि मैं आपकी इच्छा पूरी कर सकूंगा।' दृढ़ स्वर मे जुगल बोला।

'यह मत सोचना कि दूसरे भाग लेने वाले तुमसे बड़ी कक्षाओं में पढ़ते हैं। तुम्हें हर हालत में प्रथम आना है।' स्नेह भरे स्वर में प्रधानाध्यापक जी बोले।

'आपका आशीर्वाद चाहिए, सर!'

'जाओ। मैं भी पहुंचूंगा।'

जुगल बाहर आ गया। कुछ ही देर में घंटी बजी। फिर से कक्षाएं लगनी शुरू

हो गई। दीपक ने उससे पूछा—

'क्या बात थी, भई ! पेशी क्यों हुई ?'

'कल वाद-विवाद प्रतियोगिता है न। इसलिए बुलाया था।'

'यार···मैं भी चलूंगा। कितने बजे है ?' दीपक बोला।

'दस बजे है।' जुगल ने उत्तर दिया।

'मैं साढ़े नौ बजे पहुंच रहा हूं।'

'मैं इन्तजार करूंगा।' जुगल ने जवाब दिया।

'पर प्रतियोगिता है कहां ?'

'टाउन हॉल में।'

'ठीक है···तुम्हारे घर से पन्द्रह मिनट का रास्ता है।'

'दीपक···बात नहीं।' अध्यापक जी ने टोका।

दूसरे दिन दीपक ठीक साढ़े नौ बजे जुगल के घर पहुंच गया। जुगल के माता-पिता ने उसे स्नेह से विदा किया। दोनों मित्र घर से रवाना हुए। दीपक साइकिल चला रहा था और जुगल पीछे बैठा हुआ था। मोड़ आया। साइकिल सीधी सड़क पर आगे बढ़ी कि जुगल की नजर सामने खड़ी भीड़ पर पड़ी।

'दीपक ठहर तो···देखें क्या बात है ?'

दीपक ने साइकिल रोक दी। जुगल ने भीड़ में घुसकर देखा कि एक आदमी खून से लथपथ पड़ा हुआ है सामने ही उसकी साइकिल भी पड़ी हुई थी। साइकिल की बुरी हालत देखकर जुगल समझ गया कि कोई वाहन टक्कर मार कर भाग गया। जुगल से चुप न रहा गया।

'आप लोग खड़े होकर तमाशा देख रहे हैं। इसे जल्दी अस्पताल पहुंचाइए न··· चोट काफी लगी है।'

'अरे ! तुम अभी बच्चे हो। तुम्हें क्या पता कि इसे अस्पताल ले जाने का क्या नतीजा भुगतना पड़ेगा ? पुलिस का हाल नहीं जानते क्या ?' एक अधेड़ आदमी ने जुगल की बात का उत्तर दिया।

'तो इसे मर जाने दें ?' जुगल तेज स्वर में बोला।

'क्या पता, अगर मर गया होगा तो यहां खड़े रहना भी आफत है।' कहते ही, वह आदमी यहां से खिसक गया।

'बच्चे तुम भी लोग जाओ। गवाही में फंस गए तो आफत हो जाएगी।' एक दूसरा व्यक्ति जाते हुए जुगल से बोला। धीरे-धीरे लोग खिसकते रहे। दीपक, जुगल के पास आया।

'यार समय होने वाला है।' दीपक बोला। जुगल ने उस व्यक्ति के पास जाकर ध्यान से देखा।

'इसकी सांस तो चल रही है पर खून इसी प्रकार निकलता गया तो मर जाएगा।' जुगल बोला।

'तू छोड़ यार! कहां चक्कर में फंस रहा है।' दीपक बोला।

'चक्कर'''इसकी जिंदगी का सवाल है। तू देख रहा है न लोग कैसे इसे अनदेखा कर रहे हैं। चलो, इसे अस्पताल ले चलें।' जुगल बोला।

'इतने लोग बेवकूफ थोड़े ही है'''यार! पुलिस परेशान करेगी और फिर तुझे टाउन हॉल भी पहुंचना है।'

'इस समय पहला फर्ज इसे अस्पताल पहुंचाना है। तू टैक्सी वाले को रोक।' जुगल बोला।

'बच्चों'''तुम इस चक्कर में मत फंसो।' एक जवान आदमी बोला।

'भाई साहब, अगर इसकी जगह आपका भाई होता या पिता होता, तो भी आप ऐसा ही कहते क्या?' जुगल तीखे स्वर में बोला।

दीपक ने हाथ के इशारे से एक टैक्सी रोकी।

'आकर इसे उठाने में मदद करना—भाई!' जुगल ने टैक्सी वाले से कहा।

टैक्सी वाले ने बिना कुछ कहे टैक्सी स्टार्ट की और चला गया।

'बच्चो'''इस मामले में तुम्हारी कोई मदद नहीं करेगा। तुम इसे अस्पताल ले भी जाओगे तो डॉक्टर, बिना पुलिस में रिपोर्ट दर्ज कराये इसका इलाज नहीं करेंगे, तुम्हें ज्यादा ही इसकी मदद करने का शौक है तो पुलिस को फोन कर दो।' और उस आदमी ने फोन नम्बर बता दिए।

'जाओ दीपक, पास ही नीलम स्टोर है न—वहाँ से फोन कर आओ।'

दीपक चला गया। दो चार लोग, जो खड़े भी थे—वे भी खिसकने लगे। एक ने
र मे जुगल को सलाह दी—

'मुझे लगता है, यह आदमी तो मर चुका है। तुम अपनी गर्दन क्यों फंसवा रहे हो ?
लिस आएगी और इसे ले जाएगी।'

जुगल ने कोई जवाब नहीं दिया। दीपक आया।

'क्या कहा !' जुगल ने पूछा।

'हमें यही ठहरने के लिए कहा है।'

और जब पुलिस जीप आई तो उन दोनों को छोड़कर, वहाँ कोई नही था। एक
ोबीले पुलिस वाले ने उतरकर पूछा—

'फोन करने वाले सज्जन कहाँ हैं !' स्वर रूखा था।

'फोन करने वाले हम ही थे ''अंकल !'

अंकल शब्द से पुलिस वाला कुछ नरम पड़ा। कोमल स्वर में उसने पूछा—

'तुम दोनों यहाँ क्या कर रहे हो ?'

'अंकल, क्या यह ठीक नही रहेगा कि हम पहले इसे अस्पताल ले जाए ?'

'बिलकुल ठीक कहा। अरे ! रामसिंह देख तो, जिन्दा है क्या ?'

रामसिंह ने बेहोश पड़े आदमी की नब्ज देखी और बोला—

'जिन्दा तो है पर खून काफी निकल गया है।'

'जल्दी से जीप मे लिटाओ। चलो बच्चों, तुम भी बैठो। बयान लेकर तुम्हे छोड दूंगा। रामसिंह इनकी साइकिल जीप मे पीछे ले लो। शोभा और तुम इस बेहोश आदमी की साइकिल लेकर थाने में पहुंचो।'

जल्दी ही वे अस्पताल पहुच गए। डॉक्टर ने बेहोश आदमी को देखा और फिर तुरन्त स्ट्रेचर मंगवा कर उसे अन्दर कही ले गए। करीब बीस मिनट बाद आकर डॉक्टर बोला—

'थानेदार साहब, हम कोशिश तो बचाने की कर रहे हैं लेकिन खून का इन्तजाम नही हो पा रहा है।'

'डॉक्टर साहब, मेरा खून अगर काम आ सकता है…तो मैं तैयार हूं।' जुगल फौरन बोला।

'और मैं भी तैयार हूं।' दीपक भी बोला।

'लेकिन…तुम्हारे मां-बाप…' डॉक्टर बोला।

'आप परवाह मत करिए। हम कोई गलत काम नहीं कर रहे हैं।' जुगल बोला।

'जीवन…इनका खून टैस्ट करो।' डॉक्टर बोला।

'डॉक्टर साहब! ये बच्चे इतनी हिम्मत कर रहे हैं और एक मैं हूं। यह प्रस्ताव तो मुझे रखना चाहिए था।' मुस्कराते हुए थानेदार बोला।

'यार, तुम दोनों ने तो मुझे शर्मिन्दा कर दिया। कमाल के हो तुम। तुमसे आज एक बात सीख ली। मैं तुमसे दोस्ती चाहता हूं।' थानेदार ने उन दोनों के कंधे पर स्नेह से हाथ रखकर कहा।

'पुलिस वालों की दुश्मनी और दोस्ती दोनों ही खराब हैं पर फिर भी हम दोस्ती को अच्छा समझते हैं।'

'धन्यवाद।' थानेदार खिलखिलाते हुए हंसकर बोला।

खून टैस्ट किया गया। जुगल का खून लायक पाया गया। वह जीवन के साथ चला गया।

'आओ…हम इतने में जुगल के घर तो सूचित कर दें।' थानेदार ने दीपक से कहा। थानेदार और दीपक जुगल के घर गए। दीपक ने उन्हें सारी बात बताई। जुगल की मां थानेदार के पास आकर बोलीं—

'भैया जुगल के पिताजी तो दफ्तर में हैं। मैं आपके साथ चलती हूं।'

'आप कहें तो उन्हें भी सूचित कर दें।' थानेदार बोला।

'नहीं…मैं साथ चलती हूं।' जुगल की मां बोली। तीनों ही अस्पताल रवाना हुए। रास्ते में हलवाई की दुकान पर थानेदार ने जीप रुकवाई और उतर कर थोड़ी देर में वापस आ गया। उसके हाथ में कुल्हड़ था। जुगल की मां की ओर देखकर बोला—

'अपने दोस्त के लिए गर्म दूध लिया है।'

'दोस्त !' जुगल की मां बोली।

'हां, ये हमारे दोस्त बन गए हैं।' दीपक बोला।

जुगल मां की ओर देखकर मुस्कराया। करीब चार एक घण्टे के बाद डॉक्टर ने आकर बताया कि घायल आदमी को शाम तक होश आ जाएगा।

'आप चाहे तो घर जा सकते हैं। मैं इस बच्चे के साहस की तारीफ करता हूं। इसके कारण एक जीवन बच गया।' डॉक्टर ने जगल की पीठ थपथपाई। थानेदार उन तीनो को घर छोड़कर चला गया। शाम को जुगल के पिताजी घर आए और जब उन्होंने सारी घटना सुनी तो जुगल को शाबाशी दी।

'पापा, आप जाकर उस आदमी को देख आइए कि क्या अब वह ठीक है।'

'ठीक है। मैं जाकर आता हूँ।'

इधर उसके पिताजी निकले और उधर प्रधानाध्यापक जी आ गए। उनकी आवाज जुगल की मा तक पहुच रही थी।

'मैं टाउन हाल मे अन्त तक खडा रहा लेकिन जुगल पहुचा नही।'

'जी आइए। उससे खुद बात कर लीजिए।' उसकी मा प्रधानाध्यापक जी को उसके पास छोड गई। उसने उठने की कोशिश की पर प्रधानाध्यापक जी ने मना कर दिया। जुगल ने सारी बात बता दी और बोला—

'सर, मुझे दु ख है कि मैं आपकी इच्छा पूरी नही कर सका।'

'अरे ! तुमने तो यह सबसे बड़ा काम किया है। सबसे बड़ी प्रतियोगिता मे तुम्हारी जीत हुई है। शाबाश ! मुझे तुम पर गर्व है। मेरे बेटे, तुमने और दीपक ने अपना फर्ज पूरा किया इसके लिए मेरी ओर से तुम्हें बधाई।' प्रधानाध्यापक जी चले गए। पिताजी ने वापस आकर उसे बताया कि वह आदमी बिल्कुल ठीक है। तुम्हारे गुण गा रहा था। अगले महीने जुगल और दीपक को कई शुभ समाचार मिले। स्कूल ने उन्हे इनाम देने की घोषणा की। पुलिस अधीक्षक ने भी उन्हे प्रशंसा-पत्र और इनाम दिया। जुगल के पिताजी ने भी उन्हे एक-एक हाथ घड़ी लाकर दी। लेकिन जुगल को सबसे अच्छा

पुरस्कार उस घायल आदमी का दिया हुआ मिला। एक शाम को वह उसके घर फूलों का गुलदस्ता लेकर आया था और बहुत ही मीठे स्वर में बोला—

'बेटे! मैं बहुत ही गरीब आदमी हूं। मेरी पत्नी, बच्ची और मैं तुम्हारा अहसान जिन्दगी-भर नहीं भूल सकते। मेरी बच्चियां बोलीं कि हमें भाई मिल गया। उनका कोई भाई नहीं है। उन्होंने खुद यह फूलों का गुलदस्ता बनाकर तुम्हारे लिए भेजा है।'

जुगल ने फुलों का गुलदस्ता ले लिया। उसे लग रहा था कि गुलदस्ते में फूल नहीं, उसकी अनदेखी बहनें मुस्करा रही हैं।

□

सूरज की सूझ

टी. एस. राव 'राजस्थानी'

शाम का समय था।

गाँव के बाहर बड़े तालाब के किनारे, दीपनाथ मन्दिर के पास हरे-भरे मैदान में कुछ नन्हे-नन्हे बच्चे आँखमिचौनी खेल रहे थे।

राजू ने पिंकी के "धप्पी" दे दी, तो वह खुशी से उछल पड़ी। राजू की आँखों से पट्टी खोली गई और पिंकी की आँखों पर पट्टी बाँध दी गई।

पिंकी अपने साथियों को ढूँढने लगी—इधर उधर घूमने लगी। लेकिन कोई हाथ नहीं आया।

एकाएक नन्हा पिंटू खुशी से चहक उठा, "अरे भालू! मदारी का भालू! अब यह खेल दिखाएगा·· ···"

सबकी नजर उस ओर घूम गई। देखा—सचमुच एक बड़ा-सा काला भालू अपनी धुन में मगन मन्दिर की ओर चला आ रहा था।

राजू, मधु, नीलेश, नीरा, पिंटू सभी अभी छोटे थे— चार से नौ वर्ष की उम्र के। उन्होंने सोचा—यह पालतू भालू है और इस भालू के पीछे-पीछे मदारी भी आ रहा होगा, जो सबको भालू के करतब दिखाएगा! भालू को देखकर सभी ऐसे खुश हो गए मानो भालू उनका दोस्त हो।

लेकिन इन बच्चों को यह मालूम नहीं था कि यह जंगली भालू है? पालतू भालू नहीं है—जिसे मदारी नचाकर खेल दिखाते हैं·· वे क्या जानें कि जंगली भालू और पालतू भालू में कोई अंतर होता है। जंगली भालू खूंखार होता है और मनुष्य को देखते ही हमला कर देता है···

तभी मन्दिर का पुजारी प्रसाद बाँटने के लिए बाहर आया, तो भालू को मन्दिर की ओर आते हुए देखकर उसके हाथों से प्रसाद की थाली गिर गई। वह भय के मारे जोर से चिल्लाया, "अरे बाप रे, भालू! भागो भागो...भालू फाड़ खाएगा...जंगली भालू है...।"

डर से थरथर कांपते हुए पुजारी, हनुमान चालीसा का जोर-जोर से पाठ करते हुए मन्दिर में घुस गया और भीतर से किवाड़ बंद कर लिए। अब कहीं बच्चों की समझ में आया कि यह तो जंगली भालू है। सभी डरकर इधर-उधर भागने लगे। पिंकी की आखों पर पट्टी बंधी थी। वह पट्टी खोलने की कोशिश करती हुई अपने साथियों की आवाज की दिशा में भागने लगी।

बच्चों को चिल्लाकर भागता हुआ देखकर भालू चौंका और वह बच्चों का पीछा करने लगा। उसने भी अपनी चाल बढ़ा दी।

सभी बच्चे तेजी से भाग रहे थे। पिंकी कुछ पीछे रह गई थी, क्योंकि उसका काफी समय पट्टी खोलने में बीत गया था। भागते-भागते पिंकी ने पीछे मुड़कर देखा, तो वह सिहर उठी ! भालू उसके काफी समीप आ पहुंचा था। वह और तेजी से दौड़ने लगी और चिल्लाने लगी—"बचाओ। बचाओ ! भालू···"

पिंकी की आवाज सुनकर एक पेड़ के नीचे आराम से लेटा हुआ बारह-तेरह वर्ष का आदिवासी लड़का सूरज चौंक पड़ा।

सूरज जंगल के उस पार एक छोटे-से गांव में रहता था। उसके गांव के लोगों के पास थोड़ी-बहुत पथरीली जमीन थी। अच्छी बरसात होने पर मक्का की फसल हो जाती थी। सूरज रोज जंगल से जलाऊ लकड़ी बटोरकर, शहर में लाकर बेच देता था। इस तरह वह अपना और अपने परिवार का गुजारा करता था।

आज शहर का हाट था और सूरज लकड़ियों का गट्ठर सिर पर लाद कर रोज की तरह बेचने आया था। उसकी कमीज चिथड़े-चिथड़े हो गई थी। नई कमीज की उसे जरूरत थी। इसके लिए वह पिछले तीन सप्ताह से दिन-रात मेहनत करके पैसे इकट्ठा कर रहा था। आज उसने लकड़ियों का गट्ठर बेचकर और पिछली बचत के पैसे से अपने लिए नई कमीज और घर की जरूरत का सामान खरीदा था। उसकी पोटली में आटा, नमक-मिर्च, माचिस आदि बंधे थे। पास में घासलेट की बोतल और उसकी लाठी पड़ी थी। सूरज को काफी दूर चलकर अपने गांव पहुंचना था। इसलिए वह कुछ देर आराम करने के लिए पेड़ के नीचे लेट गया था।

सूरज ने देखा कि एक विशालकाय काला भालू एक नन्हीं लड़की का पीछा कर रहा है। भालू उसके काफी नजदीक आ पहुंचा था और अपने दोनों पिछले पैरों पर खड़ा हो गया था। उसका मुंह खुला हुआ था।

बड़ा ही भयानक दृश्य था ! भालू कुछ ही पल में किसी पर झपट्टा मारने की स्थिति में था। सूरज ने तत्काल निश्चय कर लिया कि वह इस बालिका को बचाएगा। सूरज ने देर नहीं की, उसने एक बड़ा पत्थर उठाया और भालू की दिशा में फेंक दिया। पत्थर सीधा भालू के जबड़े पर जा लगा। भालू तिलमिला गया। और उसने गर्दन घुमाकर देखा। उसे अपना दुश्मन नजर आ गया। वह तेजी से पलटा और सूरज की ओर बढ़

गया। पिंकी भागते-भागते गिर पड़ी। यदि सूरज ने पत्थर मारने में जरा भी देर की होती, तो भालू पिंकी पर झपट चुका था।

भालू को अपनी ओर आते देखकर सूरज ने तत्काल अपनी लाठी उठाई और झटके से अपनी नई कमीज खींच ली और फुर्ती से कमीज को लाठी के सिरे पर लपेट दी। फिर उसने घासलेट की बोतल उस पर उड़ेल दी। लेकिन माचिस पोटली में थी और भालू उससे केवल दस कदम की दूरी पर रह गया था। सूरज ने पोटली को झटक दिया। उसका सारा सामान जमीन पर बिखर गया, लेकिन माचिस उसे मिल गई। उसने तत्काल लाठी के मुंह पर बंधी कमीज पर आग लगाई।

तब तक भालू उसके समीप आ कर खड़ा हो गया था। आक्रमण की तैयारी में उसके लंबे-लंबे सफेद नाखूनों वाले काले पंजे फैल चुके थे।

सूरज की लाठी मशाल बन चुकी थी। लाठी उठा कर उसने भालू के सामने कर दी। आग देख कर भालू ठिठक गया। एक पल आग की तरफ देखा और वह तेजी से पलटा और जंगल की ओर भाग खड़ा हुआ। सूरज ने काफी दूर तक उसका पीछा किया।

भालू को जंगल में खदेड़ कर सूरज वापस लौटा। सभी बच्चे पिंकी के पास आ गए थे। पिंकी और उसके साथियों का दौड़ते-दौड़ते बुरा हाल था। उसकी सासें तेजी से चल रही थी। सूरज ने पिंकी की पीठ थपथपाते हुए कहा—'अब डरो मत···डरपोक भालू तो भाग गया है···जाओ, अपने-अपने घर जाओ।'

और फिर जैसे कुछ भी नहीं हुआ हो, सूरज अपना सामान समेटकर नंगे बदन जंगल की दिशा में बढ़ गया। जंगल के उस पार उसका गांव था।

बुढ़िया चाँद वाली

आनन्द कुरेशी

बहुत दिन बीते। ठीक-ठीक पता नही, लेकिन बात पुराने जमाने की है। एक थी बुढ़िया। टूटे से मकान में रहती थी। टूटा ऐनक लगाती थी। कही जाती तो ऐनक लगाती। कोई काम करती तो ऐनक लगाती। लकडी के बिना चल नहीं सकती थी। लकड़ी के सहारे झुककर धीरे-धीरे चलती थी बुढ़िया। चलते-चलते थक जाती थी। चलते-चलते बैठ जाती थी। कोई आता, कोई जाता, बुढ़िया को कहता—"थक गई नानी।" लेकिन कोई उसकी लाठी बनने से तो रहा। थके भी तो क्या, चलना तो है ही, काम भी करना ही है। कुछ देर बैठी रहती, फिर काम पर चल पड़ती।

बरसात मे भीगती बुढ़िया, सर्दी मे ठिठुरती बुढ़िया, गर्मी में झुलसती बुढ़िया। भीगे तो भीगे, ठिठुरे तो ठिठुरे, झुलसे तो झुलसे। किसी को क्या ? कोई सगा है उसका, जो उसके लिए सोचता रहे।

बुढ़िया की तो लकड़ी है, लकड़ी रहेगी तो बुढ़िया चलेगी। लकड़ी रहेगी तो बुढ़िया काम करेगी, वरना बैठी रहे घर मे। काम करे तो करे, वर्ना भूखों मरे, किसी को क्या ?

एक दिन की बात ! बुढ़िया घर के बाहर बैठी थी। सोच रही थी—"सोनरिया को नहीं देखा, बहुत दिनो से। कितना तो बडा हो गया होगा। किसी तरह शहर आ पाती, उसे देख पाती। लेकिन कैसे चल सकूँगी, इतनी दूर !"—"नानी !"—कहीं से आवाज आई।

बुढ़िया बोली—"क्या सोनरिया आ गया ?"—उसने चारों तरफ देखा, कोई भी तो न था।

—"नानी !"—फिर आवाज आई। बुढ़िया फिर चौंकी। अब तो यहीं हो गई। ऐनक तो भीतर रखा था। भीतर जाने ही वाली थी कि फिर आवाज आई—"मैं यहाँ हूं नानी !"

पास जाकर देखा, यह तो लकड़ी है। फिर बोला कौन ?—"मैं हूं।"—लकड़ी खड़ी हो गई, मानो अभी चल पड़ेगी। बुढ़िया आश्चर्य से उसे देखती रही—"अरे तुम ? तुम तो लकड़ी हो, फिर बोली कैसे ? तुम तो बेजान हो फिर खड़ी कैसे हो गई ?"—"ऐसे ! ऐसे !"—लकड़ी ठुमक ठुमक कर टक टक करती आगे बढ़ी। बोली—"नानी बहुत दिनों से तुम्हारे साथ रही हूं। तुम्हारा साथ दिया है। अभी तुम उदास बैठी क्या सोच रही थी ?"—लकड़ी ने बुढ़िया के कन्धों पर टिक कर कहा।—"सीतरिया नहीं देखा रे बहुत दिनों से ! सोचा शहर तक चल पाती तो उसे देख आती। लेकिन कैसे चल सकती हूं इतनी दूर !" बुढ़िया फिर उदास हो गयी। सिर पर हाथ रखे बैठी रही।

—"चलोगी नहीं नानी अब तो उड़ोगी ?" लकड़ी ने खिलखिला कर कहा।

—"अरे हट !"—बुढ़िया बोली।

लकड़ी ने बुढ़िया के कान के पास जाकर कहा—"नानी जब तुम बैठी-बैठी सोच रही थी, तब एक परी उड़ती हुई इधर से निकली। तुम कहां से देखती—न तो तुम्हें अपना ध्यान था, न तुम्हारी आंखों पर ऐनक था। परी ने मेरे पास आकर पूछा—'तुम बुढ़िया नानी की लाठी हो न ?' अचानक मेरे मुंह से बोल फूट पड़े बोली—'हां मैं ही तो हूं नानी का सहारा।' परी ने कहा—'आज से मैंने अपने जादू से तुमको प्राण दिए हैं। पक्षियों की तरह उड़ने की ताकत भी दी है। तुम्हारे रहते नानी उदास हो, अच्छी बात नहीं। मैं धरती पर रह नहीं सकती, वरना मैं भी कुछ करती।' मैंने पूछा—'तो फिर मैं क्या करूं ?' परी ने कहा—'नानी को सैर कराओ। आज से तुम मन भर का बोझा उठा कर भी उड़ सकती हो।' इतना कह कर परी दूर आकाश में चली गई।"

बुढ़िया ने लकड़ी को देखा। लकड़ी अब उड़ रही थी। उड़ते-उड़ते बोली—"नानी मुझे पकड़ो। मुझ पर सवारी करो। मैं तुमको बिठाकर अभी उड़ती हूं शीतरिया के पास।"

बुढ़िया लकड़ी पर बैठ गई। लकड़ी फुर्र-से उड़ी। ऊँची बहुत ऊँची। तेज।

बहुत तेज।

बुढ़िया झीतरिया से मिली या न मिली, कोई जान न सका। बुढ़िया फिर नहीं लौटी। टूटे घर ने बहुत दिनों तक राह देखी। टूटे ऐनक ने भी राह देखी। एक दिन चाँद निकला। पूरा चाँद। टूटे घर ने ऊपर देखा। ऐनक ने भी ऊपर देखा। बुढ़िया तो आराम से बैठी वहाँ चरखा कात रही थी। आज तक बैठी चरखा कात रही है। टूटा घर और टूट गया। ऐनक भी और टूट गयी। टूटा घर घर न रहा। ऐनक ऐनक न रही सब मिट्टी हो गया। लेकिन चाँद जब भी पूरा निकला बुढ़िया चरखा कातती बैठी हुई दिखी।

□

किताब की कीमत

रमेशचन्द्र 'चन्द्रेश'

"बेटे, सड़क पर हमेशा बांयी ओर चलना चाहिए। दूर से आते ट्रक, मोटर, रिक्शा, साइकिल वगैरह को देखो तो एक ओर हट जाना। ये ट्रक, रिक्शा वाले बड़े बदमिजाज होते है। शराब पीकर ट्रक, रिक्शा, मोटर चलाते है। बच्चों को कुचल देते हैं।" सत्येन्द्र को स्कूल जाते समय उसकी मम्मी बतलाया करती थी। मैंने बहुत सोचा कि आदमी इतना नहीं गिरता, कहीं मां की ये बातें झूठी तो नहीं। भय से एक ओर हटकर चलता, लेकिन तभी मेरा वास्ता एक ट्रक ड्राइवर से पड़ा।

उस समय मेरी आयु दस वर्ष की थी, पांचवी कक्षा का विद्यार्थी था। जुलाई के दिन थे। मेरी कक्षा के सभी बालक कापी-किताबें ले आये थे, सिर्फ मैं ही रह गया था। पिताजी की दूर बहुत दूर नौकरी थी। उन्हें अपने स्कूल से ही फुरसत नहीं मिलती थी, इसलिए बाजार से मैंने ही पुस्तकें लाने का निश्चय किया। मम्मी से पैसे लिए। शाला के लिए चल पड़ा।

शाम को साढ़े चार बजे स्कूल से छूटकर मैं पास के बाजार में गया। मैं पहले कभी बाजार नहीं आया था। बाजार में घुसते ही भय-सा लगने लगा। मैं कुछ कांपता-सा पुस्तकों की दुकान को खड़ा देखता रहा। मुझे कुछ समय यूं ही खड़े-खड़े बीत गया। दुकानदार ने देखा कि एक लड़का खड़ा है, बोला—'क्या लोगे।' झट मैंने कहा—'पुस्तक'। साथ किताबों का मोल भाव करके खरीदने की वजह से दुकान पर मुझे अधिक समय बीत गया। मैं किताबें-कापियां बस्ते में रख जब बाजार से बाहर आया तो छह बज चुके थे। वहां से मुझे दो मील पैदल चल कर दीर्घापुर आना था। फिर वहां से एक मील की कच्ची

पगडण्डी पार कर अपने गांव शाहपुर पहुंचना था।

मैं मुश्किल से एक फर्लांग चला ही था कि अचानक बूंदा-बांदी होने लगी। चारों ओर से बादल घिर आने की वजह से अंधेरा और घना हो गया। चारों ओर सांय-सांय चलती हवा और ज्यादा होती हुई बूंदा-बूंदी।

एक पेड़ के नीचे चार-पांच आदमियों को खड़ा देख मैं भी बारिश से बचने के लिए वहीं खड़ा हो गया। सोचा, बारिश बन्द हो जाएगी तो चल दूंगा। लेकिन बारिश का तो थमने का नाम ही न था, और जोर से होने लगी।

जिस पेड़ के नीचे हम खड़े थे पानी की बूंदें पड़ने लगी। मैंने फौरन अपनी कमीज उतारकर बस्ते को खूब अच्छी तरह से बांध लिया। उस समय मेरे शरीर पर केवल एक नेकर था। मैं नंगे बदन बस्ते को सीने से चिपकाए खड़ा था। मेरे पास खड़े आदमियों ने देखा कि बारिश नहीं रुकेगी तो एक आते हुए ट्रक को रोक लिया। एक रुपया सवारी किराया तय हुआ। सब ट्रक पर चढ गए।

अब सिर्फ मैं ही बचा था। ट्रक के ड्राइवर ने मुझे अकेला खड़ा देख बुलाया और बोला, 'चल लड़के तू भी गड्डी में बैठ जा। ओय कहां जाना है ?'

सुनकर मां के बताए उपदेशों का ध्यान आया। मैं कांपने लगा। मैंने कांपते हुए स्वर में बताया। 'जी शाहपुरा।' 'ठीक है, आ जा।' कहकर ड्राइवर ने दरवाजा खोल दिया। मेरे पास उस समय एक भी पैसा नहीं था। इसलिए मैंने सकोच भरे स्वर में कहा—'बाबाजी मेरे पास पैसे नहीं है।'

'अरे बेटे तुझसे मुझे पैसा नहीं लेना। आ जा।' कहते हुए मुझे खींच लिया। मैं कांप उठा। ट्रक चलने लगा। मैं मन ही मन खुश था कि जिन लोगों ने किराया दिया है वो पीछे बैठे हैं, और मैंने किराया नहीं दिया जो आगे गद्दीदार सीट पर। तभी ड्राइवर बोला, 'बेटा अपनी कमीज को खोलकर पहन लो।' मैंने कमीज बस्ते से खोलकर पहन ली।

थोड़ी देर बाद ट्रक दीर्घापुरी आ गया, रुका। लोग उतर पड़े। मैं भी उतरने लगा। बाबाजी ने पूछा 'बेटे कहां जाना है ?' मैंने कहा, 'बाबाजी मेरा घर यहां से एक मील दूर है।' बारिश उस समय धीरे-धीरे हो रही थी। किताबों-कापियों के भीग जाने के डर से मैंने फिर कमीज उतार दी। बस्ता बांधा।

बाबाजी ध्यान से मुझे देख रहे थे, उन किताबों के प्रति मेरा कितना लगाव था। वो मुस्करा कर बोले—'लड़के कमीज पहन ले, मैं तेरे घर ही तुझे छोड़ दूंगा।'

बाबाजी की इस बात पर मुझे विश्वास नहीं हुआ। मैं जानता था ये वर्षा का मौसम कीचड़ और उस पगडण्डी पर केवल बैलगाड़ी ही चल सकती थी। दूसरे, मन में आशंका, कहीं यह ड्राइवर मुझे धोखा देना तो नहीं चाहता। उधर क्लीनर भी बाबाजी को समझाने लगा कि गड्डी खराब हो जाएगी, टूट जाएगी।

बाबाजी ने मुड़कर क्लीनर से कहा, 'ओए बेवकूफ! इस बच्चे के बस्ते से भी ज्यादा कीमत गड्डी की है। नासमझ इस गड्डी से कीमती तो ये किताबें हैं। खुद से ज्यादा कीमती ये बच्चा अपनी किताबों को मानता है। यह कह रहा था कि बाबाजी ये पुस्तकें खाली समय में भी मित्र हैं। इनमें तो मेरा सब कुछ है।' कहते-कहते बाबाजी ने ट्रक कच्ची पगडण्डी पर मोड़ दिया। ट्रक सैकड़ों हिचकोले खाता गांव पहुंचा। मैं उतरा, किन्तु मेरा बस्ता एक प्लास्टिक की थैली में बाबाजी को रखते देख रहा था। उन्होंने बस्ता मुझे पकड़ा दिया। मैं भागा-भागा घर आया। मुझे घर आए देख माता-पिता बहुत खुश हुए। फौरन मैंने बाबाजी के बारे में पिताजी को बताया। वे बोले, 'बेवकूफ! तू उन्हें घर क्यों नहीं लाया।" कहते मेरे पिता बुलाने को भागे, तब तक ट्रक जा चुका था।

नया रवि

अरनी रॉबर्ट्स

रवि ने गुलेल में पत्थर रखा। निशाना बनाकर गुलेल के रबर को खींचा और उसमें रखा पत्थर छोड़ दिया। पत्थर सीधा जाकर पेड़ पर बैठे कबूतर के लगा। बेचारा नन्हा-सा कबूतर ''पत्थर लगते ही नीचे आ गिरा। रवि खुशी से उस ओर तड़फते कबूतर को देखने लगा।

यह रवि के लिए कोई नई बात नहीं थी। वह आये दिन किसी न किसी पक्षी को निशाना बनाता रहता था। एक दिन वह अपने एक साथी मदन के साथ गांव गया था। यह गाव शहर से पाच किलो मीटर दूर था। वहां मदन के घर पर उसने गुलेल देखी थी।

"क्या है यह ? इससे क्या करते हो मदन ?" उसने पूछा था।

मदन ने उसे गुलेल चलाकर बताया था—"यह गुलेल है'' हम खेतो में इससे पक्षियों को उड़ाते है—सावधानी से पत्थर फेंकते हैं कि उन्हे लगे नहीं—किसान केवल उनको डराकर उड़ाते है ताकि वे खेत खराब न करे।"

रवि की आखो में चमक आ गयी थी। उसने मदन से कहा था—"मुझे एक दिन के लिए अपनी गुलेल दे दो। बात यह है कि हमारे यहा कव्वे बहुत आते हैं उनको डराके गुलेल वापस कर दूगा।"

मदन ने उसे गुलेल तो दे दी पर रवि को अच्छी प्रकार समझा दिया था कि वह उसका गलत इस्तेमाल न करे।

रवि गुलेल पाकर बहुत खुश था। लेकिन उसे कव्वे तो उड़ाने नहीं थे, पक्षियों को

निशाना बनाना था। उसने मदन को गुलेल नही लौटाई—रोज ही वह एक दो पक्षियों को मार देता था। यह उसके लिए नया खेल था।

रवि बेहद शैतान लड़का था। उसके साथ पढ़ने वाले बच्चे उसे पसन्द नहीं करते थे, क्योंकि किसी से वह कोई चीज छीन लेता, तो किसी से बगैर बात ही लड़ाई कर बैठता और झूठी बाते बोलकर दोस्तों में लड़ाई करवा देता। पढ़ने में तो वह बहुत ही कमजोर था। अध्यापक जब पढ़ने-लिखने की सलाह देते तो वह अनसुनी कर देता था। बात-बात में झूठ बोलना तो उसकी आदत थी। बड़ों का आदर करना उसने जाना नहीं था। इन्हीं सब बातों के कारण कोई उससे दोस्ती करना नही चाहता था।

रिसेस में जब अन्य बच्चे खेल रहे थे या अपना खाना खा रहे थे, उस समय रवि कुछ शरारती बच्चो के साथ नीम के पेड़ पर बैठे पक्षियों को निशाना बना रहा था। अचानक उसका निशाना चूका और पत्थर प्रधानाध्यापकजी के कमरे की कांच की खिड़की में जाकर लगा। शीशा चकनाचूर होकर फर्श पर गिर पडा। रवि बुरी तरह घबरा गया और तेजी से स्कूल से बाहर रास्ते की तरफ भागा। हड़बड़ाहट में वह सामने आती कार को देख नही पाया। कार चालक के रोकते-रोकते भी वह टकरा गया। उसके सिर में चोट लगी। उसे तुरन्त अस्पताल पहुंचाया गया।

रवि का एक्सीडेंट हुये दूसरा दिन था। उसके सिर में सात टांके आये थे। वह अस्पताल में अपने बैड पर चुपचाप लेटा हुआ था। उसके सिर पर पट्टी बँधी हुयी थी। वह बहुत कमजोरी अनुभव कर रहा था। पास मे उसकी मा बैठी थी!

अचानक वॉर्ड में प्रधानाध्यापक जो उसके पिताजी के साथ आते हुये दिखाई दिये। प्रधानाध्यापकजी ने पास आकर स्नेह से पूछा, "अब कैसे हो रवि बेटे ?"

"जी···अच्छा हूं सर··वो गलती···से······शीशा टूट गया था···मुझे माफ कर दीजिए, सर···!"

रवि के पास बैठते हुये वे बोले, "बेटा !···रवि शीशा टूट गया···उसकी कोई बात नही···वह तो नया लग जायेगा···पर बेटे···गुलेल से जो पक्षी तुम मार डालते हो··· क्या उनकी जान वापिस हो सकती है ?···सोचो···तुम्हारे सिर में चोट लगी · कितनी पीड़ा हुई तुम्हें ! उन छोटे-छोटे पक्षियों को जब पत्थर लगता होगा···कैसी पीड़ा होती

होगी उनको···इतनी कि वे मर जाते हैं पीड़ा में।"

प्रधानाध्यापक जी की बात सुनकर रवि की आंखों से आंसू बहने लगे······वह सोचने लगा···मैंने उनकी पीडा के बारे में कभी सोचा ही नहीं···मैं इसे एक खेल समझता रहा और पक्षियों को अपनी जान देनी पड़ी···।'

रवि की कक्षा के साथी जब अन्दर आये तो उन्हें देखकर उसकी आंखों में खुशी के आंसू आ गये। वह बोला, "तुम मुझे अपना दोस्त बना लो ··अब मैं पुराना रवि नहीं हूं···मैं अब नया रवि बन गया हूं तुम्हारी तरह अच्छा।"

रवि की बात सुनकर कक्षा के साथी खुश हो गये, वे बोले, "हम सब आज से तुम्हारे दोस्त हैं रवि।"

□

ट्रांजिस्टर के चक्कर में

वीणा गुप्ता

चोमूराम अपने मित्रों के घर पर रेडियो या ट्रांजिस्टर देखकर सदा खुश भी एक खरीदने की सोचता, परन्तु जेब की हालत देखकर सदा बासी खिचड़ी की तरह मुंह बिचकाकर रह जाता। करता भी क्या, बेचारे को शौक तो था लेकिन खरीदने के लिये पैसे नही थे।

चोमूराम को जानने-पहचानने वाले सभी उसके इस शौक को जानते थे। जहां कहीं मौका मिलता, बेचारा चोमूराम ठण्डी सास भर कर कहता, "घर में रेडियो न हो तो जीना ही बेकार है, भले पहनने को कपड़े न हों पर ट्रांजिस्टर तो होना ही चाहिए।"

एक बार चोमूराम के एक मित्र ने उसे सलाह दी, "भई चोमूराम, तुम्हे गाने सुनने का इतना ही शौक है तो अपनी साईकिल बेचकर एक छोटा-सा ट्रान्जिस्टर क्यों नहीं खरीद लेते हो?"

मित्र की सलाह सुनते ही चोमूराम के मन में उधेड़-बुन आरम्भ हो गई। आखिर दो दिन के सोच-विचार के बाद उसने यह निर्णय कर ही लिया।

उसी दिन शाम को चोमूराम ने अपनी साईकल को रगड़कर धोया और किसी नई नवेली दुल्हन की तरह सजाया। फिर उस पर सवार होकर बाजार निकला और सीधा एक रेडियो वाले की दुकान पर पहुंचा।

"यह रेडियो कितने का है?"

"साढ़े चार सौ का।"

"ये?"

"तीन सौ।"

"और ये।"

"दो सौ सात।"

"भई कोई सस्ता रेडियो नहीं है क्या ?"

सस्ते का नाम सुनकर दुकानदार ने घोमूराम को ऊपर से नीचे तक घूरा और उसकी खस्ता हालत को भांपते हुए बोला, "अरे सस्ते के चक्कर में ही हो तो रेडियो का भूत सिर से उतारो और कोई छोटा-सा लोकल ट्रान्जिस्टर खरीद लो।"

यह सुनते ही घोमूराम को क्रोध तो बहुत आया लेकिन कर कुछ नहीं सका। बस इतना ही कहा—"अच्छा तो इस ट्रांजिस्टर की कीमत कितनी होगी।"

"अरे भैया जी, आप की निगाह तो आसमान में जा टगती है। यहां जरा नीचे देखो। यह ट्रान्जिस्टर केवल एक सौ सत्तर का है। मेरी मानो तो यही ले लो।"

"अगर कोई इससे सस्ता हो तो।"

"हां, हां है। यह लो, ये इससे भी सस्ता है। केवल एक सौ तीस का।"

एक सौ तीस सुनते ही घोमूराम की मूंछे फड़फड़ाने लगी। चेहरे पर रौनक छा गई।

"हां भई, यह ठीक रहेगा।"

"तो पैक करा दूं।"

पैक का शब्द सुनते ही घोमूराम की हालत पतली हो गई।

"ठहरो भई ठहरो। मैं जरा रुपयों का प्रबन्ध कर लूं। फिर आपके पास आता हूं।"

यह सुनते ही दुकानदार भड़क उठा।

"जाने कहां-कहां से आ जाते हैं, खरीददारी करने। पैसा पास नहीं और शौक रईसों के।"

दुकानदार बड़बड़ाता रहा और घोमूराम चुपचाप दुकान से उतरकर अपनी साईकिल पर पैडल मारता हुआ आगे बढ़ गया।

कुछ दूर जाने पर एक साईकिल वाले की दुकान के सामने साईकिल रोकी और

चोमूराम साईकिल उठाकर काउन्टर के पास पहुंचा, मुस्कराते हुए उसने कहा, "आप [illegible] बेचते हैं।"

"और नहीं तो क्या अचार बनाते हैं?"

चिढ़ते हुए दुकानदार ने कहा। चोमूराम पहले ही कुछ [illegible] रहा था। ऊपर से दुकानदार की भड़क-आवाज। बेचारा एकदम घबरा गया।

"जी...जी...मेरा मतलब है कि क्या आप पुरानी साईकिल खरीदते भी हैं?"

पुरानी साईकिल खरीदने की बात सुनकर दुकानदार ने चोमूराम को गौर से देखा। फिर नज़रें उठाकर उसके पीछे खड़ी साईकिल का जायजा लिया।

"जी हां, ज़रूर खरीदते हैं। आप अपनी साईकिल जरा इधर ले आइये तब तक मैं एक टेलीफोन कर लूं।"

"हां...हां...आप बात कीजिए। मैं अभी साईकिल उठा लाता हूं।"

कहते हुए चोमूराम ने कहा और दुकान से सीढ़ियां उतर कर गया। साईकिल उठाई और पलट पड़ा। उसके काउन्टर के पास पहुंचते ही दुकानदार ने टेलीफोन रख दिया। फिर वह साईकल को उलट-पलट कर देखने लगा।

"हां तो कितने रुपये लोगे इस खटारे के।"

"क्या कहा? खटारा।"

"और नहीं तो क्या, तेल लगाकर चमकाने से कोई साईकल नई थोड़े ही हो जाती है। अगर चाहो तो साठ रुपये ले लो।"

साठ रुपये का नाम सुनते ही चोमूराम का पारा चढ़ गया। गुस्से में लाल-पीला होकर वह दुकानदार को उलटा-सुलटा कहने लगा। कुछ देर की धकाधक के बाद चोमूराम अपनी साईकल को उठाकर नीचे उतरने लगा तो दुकानदार ने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा, "जरा ठहरो बेटा, ऐसे कहाँ चले, अभी तुम्हारी ससुराल वाले आते ही होंगे।...
......लो आ गए।"

तभी सामने से पुलिस वाले आते दिखाई दिए। चोमूराम की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई।

आइये-आइये मैंने ही आपको फोन किया था। लो सम्भालो अपने मेहमान को।

और यह रही वह साईकल।"

दुकानदार ने कहा तो एक सिपाही जोरदार आवाज में बोला, "क्यों बे कहां से उठाई है ?"

"क...........क्या ?"

"क्यों बेटा, अब थूक निगलने लगे।"

दूसरे सिपाही ने कहा और चोमूराम का हाथ पकड़ लिया।

"लेकिन यह साईकल तो मेरी है साहब।"

किसी तरह चोमूराम ने अपनी बात कही।

"यह तो थाने चलकर पता लग जाएगा कि साईकल किसकी है। चलो हमारे साथ।" उसे मन ही मन अपने शौक पर गुस्सा आ रहा था। साथ ही अपने मित्र को भी साईकल बेचने की सलाह देने पर कोस रहा था।

संयोग की बात है कि चोमूराम का वही सलाहकार मित्र सामने से आता दिखाई दिया। उसे देखते ही वह पास आकर बोला, "चोमूराम इन पुलिस वालो के साथ कहा जा रहे हो ?"

"यह सब तुम्हारी सलाह का परिणाम है। मैं साईकल बेचने गया था। दुकानदार ने मुझे चोर समझकर इन्हे बुला लिया।"

चोमूराम की दयनीय स्थिति देखकर उसके मित्रो को हसी आ गई। उसके काफी जोर देकर कहने पर पुलिस वालों को यकीन तो हो गया कि चोमूराम चोर नही है। फिर भी उन्होने थाने जाकर खाना पूरी करने को कहा।

बेचारे चोमूराम को मुफ्त मे थाने की सैर करनी पड़ी। लौटते हुए उसने निर्णय कर लिया कि जब तक उसके रुपये जमा नही हो जाते तब तक रेडियो खरीदने का नाम नही लेगा।

□

दैत्य कुद्धदेव

सुरेन्द्र अंचल

पुष्कर नगरी में तीन दोस्त रहते थे। क्रूरसेन, वीरसेन और धीरसेन। क्रूरसेन भाला चलाने में, वीरसेन तलवार चलाने में, धीरसेन मल्ल-युद्ध में, दूर-दूर तक प्रसिद्ध थे।

एक समय तीनों ने सलाह की कि नाग-पहाड़ में शिकार को चला जाय। यह पहाड़ नाग की तरह लहराता हुआ लम्बा चला गया है। इस पहाड़ में उन दिनों भयानक घना जंगल था।

घोड़ों पर जीन कसी गई। सुबह होते ही दड़-बड़, दड़-बड़ तीनों ही घोड़े दौड़ पड़े, जंगल की ओर। आना-सागर झील के किनारे पहुंच कर तीनों ने घोड़े खोले, नाश्ता किया और पेड़ की छाया में विश्राम करने लगे। अभी आंखे पूरी लगी ही नहीं थी कि सिंहराज की भीषण दहाड़ से जंगल कम्पायमान हो गया। तीनों हड़बड़ कर उठ बैठे। पहाड़ की घाटी से उतर कर एक नौहत्था बबर शेर, मस्त चाल से चलता हुआ झील की ओर आ रहा था। तीनों ने हथियार सम्भाल लिए और चुपचाप उसकी गतिविधि देखने लगे। धीरसेन फुसफुसाया—"चुपचाप बैठे रहो। जब वह पानी पीकर लौट जायगा, तब हम पीछा करके उसे मार डालेंगे।"

सिंहराज पानी के पास पहुंचा। एक क्षण रुका। इस पार पेड़ से बंधे घोड़े भी हिन-हिनाने लगे। शेर ने पानी पिया। लम्बा होकर एक जम्हाई ली। तब जोर से दहाड़ा और मस्ती से घाटी में लौट गया।

क्रूरसेन को उसकी उस लापरवाह चाल और गर्व भरी दहाड़ पर बड़ा क्रोध

आया। "इसके घमण्ड को चूर-चूर कर देना चाहता हूं।"

वीरसेन ने उठते हुए कहा—"मेरी तलवार का हाथ देखेगा तो दहाड़ना भूल जाएगा।"

धीरसेन ने मुस्करा कर कहा—"हमें उतावला नहीं होना चाहिए। ऐसा नौहत्या बबर सिंहराज भी तो अपने क्षेत्र का राजा होता है। उसका भी अपना सम्मान है। सावधान रहकर पीछा करो।"

क्रूरसेन ने भाला सम्भाला। वीरसेन ने तलवार सम्भाली। धीरसेन ने बाँहें फटकारी। एड़ लगाते ही घोड़े घाटी की तरफ लपके। घाटी में घोड़ों की टापें गूंजने लगी। सिंहराज सावधान हो गया। दोनो तरफ से दांव-पेच और मोरचाबन्दी होने लगी। दूर से दहाड़ तो सुनाई पड़ रही थी, किन्तु सिंहराज कहो दिखाई नहीं दे रहा था। चलते-चलते सांझ हो गई। भयकर जंगल! न जाने किधर कौन-सा रास्ता जाता है!

अंधेरा हो गया। अब एक पीपल के पेड के नीचे रात बिताने के अलावा उनके पास और कोई चारा ही नही था।

तीनों ने आसपास के पेड़ो की सूखी लकड़ियों का ढेर लगाया चकमक से आग लगाई।

धीरसेन ने सुझाव दिया। एक-एक पहर तक हम तीनो बारी-बारी से पहरा देंगे। यहां जंगली जानवरों का भी डर है तो डाकुओं का भी डर है।

वीरसेन और धीरसेन सो गए। क्रूरसेन ने भाला सम्भाला और पहरा देने लगा।

थोड़ी देर बाद ही उस पीपल के पेड़ से एक दैत्य उतरा। झब्बर-झब्बर बाल, सूप जैसे कान, लम्बे लम्बे दात। लाल-लाल आंखें। क्रूरसेन ने ललकारा—"ऐ तू कौन है! यहा मेरे साथी सो रहे हैं, दखल मत कर। जहां जाना हो, चुपचाप चला जा।"

दैत्य लाल-लाल आंखें निकालता हुआ बोला—

"दैत्य हूं मैं, क्रुद्ध देव हूं,

इन दोनों को खाने दे तो

तेरी जान बचाऊंगा।"

क्रूरसेन की क्रूरता जाग गई। क्रोध में हुंकारा—

"अरे क्रुद्धदेव ! ले, सावधान हो—

मेरा क्रोध नहीं देखा है,

तुझे मौत ने यहां फेंका है।

जब तक दम है लड़ले मुझसे,

दो-दो हाथ करूं मैं तुझसे।"

दैत्य ने हुंकार भरी और दोनों में लड़ाई छिड़ गई। क्रूरसेन ने क्रोध में भाले का वार किया, किन्तु उसने भाला छीन कर फेंक दिया। ज्यों-ज्यों क्रूरसेन क्रोध में आ-आकर वार करता, दैत्य क्रुद्धदेव का बल व आकार बढ़ जाता। क्रूरसेन हैरान रह गया। उसने कभी मार नहीं खाई थी। अपमान के कारण क्रोध में पागल-सा हो गया। लड़ते-लड़ते पहर बीत गया। अब तो क्रूरसेन की ताकत न जाने कहां चली गई। वह थक गया। दैत्य उसे उठा-उठाकर पछाड़ने लगा। क्रूरसेन घायल होकर गिर पड़ा। दैत्य ने उसे घसीट कर अलाव के पास पटक दिया। उसका भाला उठाकर उसके पास रख दिया और पीपल के पेड़ पर चढ़ गया।

दूसरा पहर लगते ही वीरसेन की आंख खुली। वह उठा! क्रूरसेन की हालत देख कर घबराया—"अरे किस दुष्ट ने तेरी यह दुर्गत की है?"

क्रूरसेन कराहता हुआ बोला—"एक दैत्य था, क्रुद्धदेव! अब तो चला गया लगता है। तुम सावधान रहना।"

वीरसेन ने गर्व से तलवार म्यान से निकाल ली—"तू आराम की नींद सो जा। वीरसेन की तलवार की धार अब तक न किसी शिकार पशु से हारी है, न किसी दैत्य-दैत्य से हारी है। जो होगा मैं देख लूंगा।"

क्रूरसेन थका हुआ तो था ही। खर्राटे भरने लगा। वीरसेन ने आग में लकड़ियां डाली और तापने लगा। अचानक दैत्य की हुंकार सुनाई पड़ी।

दैत्य हूं मैं, क्रुद्धदेव हूं
भूखा हूं मैं, खाऊंगा !

वीरसेन सावधान हो गया। तलवार लेकर चारों ओर देखने लगा। कहीं कोई दिखाई नहीं दे रहा था। वीरसेन को बड़ा क्रोध आया। जोर से बोला—

"क्रुद्धदेव ! आ सामने आ !
आज चखा दूं तुझे मजा।"

क्रुद्धदेव पेड़ से ही कूदा-धम ! झब्बर-झब्बर बाल, सूप जैसे कान। लम्बे-लम्बे दांत। लाल आंखें। वीरसेन गरजा —"तो तू है क्रुद्धदेव ! तूने मेरे दोस्त को क्यों पछाड़ा ! ...भला चाहता है तो भाग जा यहाँ से।"

दैत्य लाल-लाल आंखें निकालता हुआ बोला—

"दैत्य हूं मैं, क्रुद्धदेव हू
भूखा हूं मैं, खाऊंगा !
इन दोनों को खाने दे तो
तेरी जान बचाऊंगा।"

वीरसेन क्रोध में आया—बोला—

"ऐ क्रुद्धदेव ! बस सावधान हो !
मेरा क्रोध नहीं देखा है,
जब तक दम है, लड़ ले मुझसे।
तुझे मौत ने यहां फेंका है।
दो-दो हाथ करूं मैं तुमसे !"

दोनों ने पैतरे बदले और भिड़ गये। वीरसेन ज्यों-ज्यों क्रोध करके वार करता, त्यों-त्यों दैत्य का बल बढ़ता जाता। वीरसेन निर्बल होने लगा। दैत्य ने तलवार छीन ली और लग लगा उठा-उठा कर पछाड़ने। वीरसेन अर्धमूर्छित-सा हो गया। दैत्य ने उसे घसीट कर अनाथ के पास शूरसेन के बायीं ओर सुला दिया। तलवार उसके पास ही है और पीपल पर चढ़ गया।

तीसरा पहर शुरू होते ही धीरसेन की आंख खुली। वह हड़बड़ा उठा। उसने

वीरसेन को कराहते हुए सुना। पूछा—"अरे यह क्या हालत हो गई!"

वीरसेन ने बताया कि—"एक दैत्य आया था। उसी क्रुद्धदेव-दैत्य ने क्रूरसेन को भी थका दिया था। ज्यों-ज्यों मैं क्रोध करता, मेरा बल घटता जाता और दैत्य का बल बढ़ता जाता!"

धीरसेन ने धीरज से कहा—"अच्छा! मैं देख लूंगा। तू आराम कर।"

वीरसेन भी खर्राटे भरने लगा। धीरसेन ने बुझती हुई आग में लकड़ियां डालीं। तभी दैत्य की हुंकार सुनाई दी—

"दैत्य हूं मैं, क्रुद्धदेव हूं
भूखा हूं मैं खाऊंगा।"

धीरसेन सावधान हुआ। धैर्यपूर्वक बोला—"वाह भाई वाह! अकेले का मन भी नहीं लग रहा था। कैसा क्रुद्ध देव है, सामने तो आ—

बड़े मजे से समय कटेगा
आजा तू झट लड़ने मुझसे!
देखूं रण से कौन हटेगा
दो-दो हाथ करूं मैं तुझसे!"

क्रुद्धदेव पेड़ से कूदकर सामने आया। उसे धीरसेन के धैर्य पर बड़ा क्रोध आया और भिड़ गया। धीरसेन हर दांव पर हंसकर पैंतरा बदलने लगा। इस बार बात उल्टी हो गई। ज्यों-ज्यों दैत्य क्रोध करता उसका बल घटने लगता। दैत्य का आकार व बल घटते-घटते एक कुत्ते के पिल्ले जैसा बौना रह गया। धीरसेन ने उसके गले में रस्सी बांध दी और पेड़ के तने से बांध दिया।

तीसरा पहर भी बीत गया। चिड़ियाएं चीं-चीं चूं-चूं करने लगीं। पूरब के आकाश में उजाला झांकने लगा। धीरसेन ने अपने दोनों साथियों को जगाया। दोनों आंखें मलते हुये उठे। वीरसेन ने उठते ही धीरसेन को तरो-ताजा और प्रसन्न देखकर पूछा, "क्यों भाई क्रुद्धदेव से सामना नहीं हुआ क्या?"

धीरसेन हंसा—"क्रुद्धदेव! देखो, उसे तो पिल्ला बनाकर बांध रखा है।"

उजाले का रहस्य

शितांशु भारद्वाज

शाला की पांचवीं कक्षा में अध्यापक बच्चों को सामाजिक विज्ञान पढ़ा रहे थे। भूतों की बात आई तो सभी बच्चों के चेहरों पर डरावने भाव आने-जाने लगे। बढ़-चढ़ कर बातें होने लगीं। अध्यापक ने समझाया कि भूत तो हमारे मन का वहम भर हुआ करता है। लेकिन बच्चों को विश्वास ही नहीं हो पा रहा था।

—गुरुजी ! आगे की पंक्ति का एक बच्चा टाट-पट्टी से उठ खड़ा हुआ। उसने पूछा, अगर भूत नहीं होता तो फिर नदी-घाटियों में उजाला कैसे होता है ?

—बैठो। अध्यापक मुस्करा दिए। वे बच्चों को समझाने लगे, यह तो तुम जानते ही हो कि हड्डियों में फासफोरस हुआ करता है।

—जी। बच्चे उत्सुक हो आये।

—और यह भी तुम जानते ही हो कि हम लोग ढोर-डंगरों को नदी-घाटियों में फेंक दिया करते हैं। अध्यापक बोले।

—जी।

तो बच्चों, उन्हीं की हड्डियों की चमक उजाले का भ्रम पैदा कर देती हैं। अध्यापक मुस्करा दिए, यह उसी फासफोरस का कमाल है।

—फासफोरस ! वंशी मन-ही-मन बुदबुदा दिया।

वंशी अध्यापक से कुछ आगे पूछ पाता कि उसी समय छुट्टी की घण्टी बजने लगी —टिनटिन'''।

कंधों पर भारी भरकम बस्ते लटकाते हुए कुछ बच्चे मटेला गांव की ओर चल

दिए। वंशी भी उन्ही के साथ चलने लगा। गांव की ओर जाते हुए बच्चे फिर से भूतों पर बतियाने लगे। दीनू जोर दे-देकर कह रहा था कि भूत सचमुच में हुआ करते हैं। उसके बाबूजी उनको भगाने की विद्या जानते हैं।

—नही रे! वंशी ने उसकी बातों का खंडन कर दिया, भूत तो हमारे मन का वहम हुआ करता है।

बातों-ही-बातो में मटेला गांव आ गया था। सभी बच्चे अपने-अपने घरों को चल दिये।

मटेला गांव के ऊपर पिछले कुछ दिनों से कोई प्रेतात्मा मडराती आ रही थी। ठीक आधी रात के आस-पास वह गाव के ऊपर पत्थरो की वर्षा करने लगती थी। रात घिरते ही वहा के लोग अपने घरों में दुबकने लगते थे।

वंशी घर आया तो उसने अपना बस्ता बाहर आंगन में पटक दिया। उसे जोर की भूख लग आई थी। वह रोटियां खाने लगा। उसके मन-मस्तिष्क में वही भूतो वाली बातें घूम रही थी। रोटी का कौर तोड कर उसने वहीं से हुक्का पीते हुए अपने बापू से पूछा, बापू क्या सचमुच मे भूत होते हैं ?

—हुंह! उसके बापू ने बात टाल दी। इसमे तुझे क्या लेना-देना ?

वंशी चुप्पी लगा गया। शाम को भी वह अपनी मा से भूत-प्रेतो के बारे में पूछताछ करता रहा। मां ने बताया कि इन दिनों रधिया की प्रेतात्मा गाव के ऊपर मडरा रही है। किंतु वशी उस बात को नही पचा सका। उसकी समझ मे नही आया। मर जाने के बाद कैसे कोई आत्मा भटका करती है!

—तू अभी बच्चा है वशी। मां उसे समझाने लगी, उस बिचारी के फूल हरिद्वार नही पहुचे थे। तब से वह प्रेत बनकर गांव पर मंडरा रही है।

—तूने कभी उसे देखा है। वंशी ने थूक घूट कर पूछा।

—हा रे। मा की आंखों में फैलाव आ गया, सफेद धोती में वह बिलकुल चुड़ैल-सी लगा करती है। कभी वह बकरा बन जाती है, तो कभी और कुछ।

सुनकर वंशी को रोमाच हो आया।

रात हो आई थी। वंशी अपने कमरे में सोया हुआ था। उसे नींद नहीं आ पा रही थी। कानों में बार-बार अध्यापक के शब्द गूंजते आ रहे थे। बिस्तर से उठकर वह खिड़की पर खड़ा हो गया। नीचे घाटी में सचमुच में ही उजाला था। वहां एक मशाल-सी जल रही थी। तो क्या यही फासफोरस की चमक है? उसने सोचा।

—खिड़की बंद कर दे वंशी। उसके बापू ने कहा।

—मैं तो फासफोरस देख रहा हूं। वंशी उसी प्रकार घाटी की ओर देखता रहा।

—तू सोता है या नहीं! उसके बापू ने अन्दर आकर उसके कान उमेठ दिए।

वंशी चुपचाप बिस्तर पर लेट गया। क्यों न आज की रात भूत का ही पीछा किया जाए! यही कुछ सोच कर वह आधी रात को घर से निकल कर बाहर आंगन में आ गया। उस समय सारा गांव गहरी नींद में सोया हुआ था। ऊपर तारों भरा आसमान था। चुपचाप वह गांव की उत्तरी सीमा की ओर चल दिया। कई सीढ़ीनुमा खेतों को पार कर वह एक टीले पर आ गया। वहीं से वह अपने गांव को देखने लगा। कमेड़े सफेदों से लिपे-पुते मकान रेल के डिब्बों पर की तरह लग रहे थे।

वंशी वहीं एक पत्थर की ओट में दुबक गया। उसे दादी अम्मा की सुनाई हुई कहानियों की याद आने लगी। वे कहा करती थीं कि आधी रात को सैंयद चला करते हैं। जिस पर भी दृष्टि पड़ती है वे उसका कलेजा खा जाते हैं। तभी दूर नीचे घाटी की ओर कोई सियार रो पड़ा—यूं-यूं? मन में साहस बटोरकर वह अपने आसपास की टोह लेने लगा। उसी समय कहीं से बकरे के मिमियाने की आवाज आई। साथ ही नीचे के खेतों में सफेद साड़ी पहने हुए कोई औरत दिखाई दी। तो क्या वही राधिका है! सांस रोके हुए वह उसी को देखने लगा।

उस सफेद छाया ने मशाल जला दी। इसके बाद वह गांव के ऊपर पत्थर बरसाने लगी—पट-पट···।

अब? वंशी कुछ भी तो निश्चय नहीं कर पा रहा था। उसका मन हुआ कि वह भी उस औरत पर पत्थर बरसाने लगे। किन्तु उसने धीरज से काम लिया। वह सफेद छाया धीरे-धीरे नीचे रामू के केले के बगीचे की ओर जाने लगी। दबे पांव वंशी भी

उसका पीछा करने लगा। ऊपर के खेत से पेट के बल रेंग कर वह उसकी गतिविधियां देखने लगा। वह छाया पेड से केले तोड़ने लगी थी। वंशी ने एक पत्थर उठाया और बाग में फेंक दिया। वहां से मिमियाने की आवाज आई। उसने निशाना साधकर एक और पत्थर फेंका।

अहा! मरा रे! इस बार बाग से एक मनुष्य की आवाज आई।

वंशी खेत से उठ खड़ा हुआ। अब उसे मालूम होने लगा कि वह कोई भूत नहीं, बल्कि चोर है। दोनों हथेलियों को मुह के पास ले जाकर वह जोर-जोर से चीखने लगा—चोर! चोर!

उस आधी रात को सारे मटेला गांव में खलबली मच गई। आखें मलते हुए लोग रामू के केले के बगीचे की ओर जाने लगे। हर कोई ही तो पूछ रहा था, कौन है? चोर कहां है?

नीचे के बाग में चोर है। वंशी हर किसी से कह रहा था।

देखते-ही-देखते उस बाग को लोगो ने घेर लिया। लोग हांडियां जलाने लगे। उस उजाले मे लोग देखते ही रह गए। बाग मे दीनू का बापू धर्मा सफेद साड़ी पहने एक ओर पड़ा दर्द में कराह रहा था। वहीं पास मे बास का मुखौटा और सफेद धोती पड़ी हुई थी। धर्मा के माथे से खून बह रहा था। देखने वालों की आखो से उसके लिए नफरत बरसने लगी।

वंशी भी नीचे बाग मे चल दिया। वह धर्मा के माथे पर पट्टी बाधने लगा। उसी समय वहां गांव के सरपंच भी आ गए। दो आदमी धर्मा को सहारा देकर ऊपर सरपंच के आगन मे ले आए। अब तक सारा गाव जाग गया था। बच्चे भूत देखने के लिए वहा जमा हो आए थे।

—बापू! दीनू तो अपने बापू को देखकर ही सुन्न पड़ गया।

वंशी भी वही खड़ा था। उसने दीनू के कन्धे पर हाथ रखकर कहा, दीनू, भूत पकड़ कर लाए है।

वंशी के बापू भी वही आ गये थे। गाव के सभी बड़े-बूढ़े वंशी की पीठ थपथपा कर उसे शाबाशी देने लगे। वंशी मद-मद मुस्करा रहा था। उजाले का सारा रहस्य खुल चुका था। उस आधी रात मे नीचे घाटी मे फासफोरस अब भी चमक रहा था।

□

मोर की ज़िद्द

दीनदयाल शर्मा

एक बार की बात है। एक जंगल में खूब सारे पक्षी रहा करते थे। सब पक्षी दिन भर इधर-उधर जंगल में तरह-तरह के फल एवं कीड़े-मकोड़े खाते। वहां बने मीठे पानी के तालाब का पानी पीते, तो उन्हें बहुत आनन्द आता।

एक दिन उस जंगल में एक साधु आया। वह काफी थका हुआ था। इसलिए एक पेड़ के नीचे लेटते ही उसे नींद आ गयी। कुछ देर बाद उसकी नींद खुली तो वह पानी पीने के लिए तालाब की ओर बढ़ा। उसे तालाब की ओर बढ़ता देखकर कई पक्षी आपस में खुसर-फुसर करने लगे कि यह साधु तालाब के पानी को गंदा कर देगा।

फिर मनकू मोर ने अपनी रौबदार आवाज में साधु को ललकारते हुए कहा, "अरे ओ साधु महात्मा ! तालाब के पानी को हाथ लगाकर गंदा मत कर देना, हाँ।"

मनकू मोर की ललकार सुनकर साधु बड़े प्रेम से बोला, "मोर भाई, एक प्यासा साधु अगर चुल्लू भर पानी पी लेगा तो क्या तालाब का पानी गन्दा हो जाएगा ?"

"हां-हां, गन्दा हो जाएगा। पानी के हाथ मत लगाना। नहीं तो अच्छा नहीं होगा, हां।" मनकू मोर के इतना कहते ही कुछ पक्षियों ने उसकी हाँ में हाँ मिलाई, तो कुछ पक्षियों ने कहा कि पी लेने दो। बेचारा प्यासा साधु है। लेकिन मनकू मोर अपनी ज़िद्द पर अड़ा रहा। वह बोला, "जिसको एक बार मैंने मना कर दिया, वह तालाब का पानी पीना तो दूर, छू भी नहीं सकता।"

साधु बोला, "प्यारे पक्षियों, तालाब का यह पानी तो ईश्वर की देन है। तुम क्यों अधिकार जताते हो ?"

मनकू मोर ठुमकते हुए बोला, "हां-हां हमारा अधिकार है। जंगल में रहते हुए हमें बहुत साल हो गए। हम इस तालाब का पानी पक्षियों के अलावा किसी को भी नही पीने देते।" मोर की बातें सुनकर खूब सारे पक्षियों ने नारा लगाया—"मनकू मोर।"—

"जिन्दाबाद।" "प्यासा साधु।"

—"मुर्दाबाद।"

पक्षियों का उसके साथ ऐसा व्यवहार देखकर साधु को गुस्सा आ गया। उसने क्रोध मे आकर पक्षियों से कहा, "इस प्यासे साधु को तुम थोड़े-से पानी के लिए तरसा रहे हो, कोई बात नही। लेकिन अब तुम भी इस तालाब के पानी को नही छू सकोगे। मेरा यह श्राप है कि आज से जो भी इस तालाब के पानी को छुएगा, उसके शरीर का वही भाग भद्दा और गन्दा हो जाएगा। मेरी कही बात को याद रखना। कही ऐसा न हो कि बाद मे पछताना पड़े।" और साधु बिना पानी पीये ही जाने लगा।

मनकू मोर साधु को चिढ़ाते हुए बोला, "अरे जा-जा, हमने तुम जैसे न जाने कितने साधु देखे हैं। बडा आया है श्राप देने वाला।" इतना कहकर मनकू मोर तालाब की ओर बढ़ने लगा तो कालू कबूतर मनकू मोर से बोला, "मनकू भैया, सारे साधु एक से नही होते। इसका श्राप सच भी हो सकता है। मेरी मानो तो जिद्द मत करो। भगवान न करे, कल को तुझे कुछ हो गया तो हम क्या करेंगे?" लेकिन मनकू मोर जिद्दी स्वभाव का था। उसे अपनी सुन्दरता और बुद्धिमानी पर बडा घमंड था। वह कबूतर से बोला, "वाह रे कालू! बडा डरपोक है तू तो।" फिर वह बोला, "तुम सब साथी देखते रहना। मैं इस मीठे पानी के तालाब में उतरता हूं और मुझे कुछ नही होगा।" और वह अट्टहास करता हुआ पानी में उतर गया। लेकिन यह क्या? पानी मे पैर रखते ही उसकी हंसी बन्द हो गयी और वह झट से पानी मे से बाहर निकल आया। बाहर आते ही उसने अपने पैरों की तरफ देखकर पहले तो आश्चर्य किया और फिर वह रोने लगा। सारे पक्षी मोर के पैरों की हालत देखकर स्तब्ध रह गये।

कालू कबूतर बोला, "मैंने क्या कहा था कि आगे मत बढ़। तब तो अपनी जिद्द पर अड़ा रहा। अब क्या होगा? अब तो वह साधु भी चला गया। और यह तालाब का पानी भी किसी काम का नही है। अब भूल से यदि कोई पक्षी यह पानी पीयेगा तो वह भी भद्दा और गन्दा हो जायेगा।"

कालू कबूतर की बात सुनकर सारे पक्षियों ने एक साथ पूछा, "तो अब क्या करें?"

"ऐसा करते हैं कि उस साधु को ढूंढ़कर उससे माफी मांगते है। फिर इस तालाब का श्राप भी समाप्त हो जायेगा।" कालू कबूतर ने सुझाव दिया।

कालू कबूतर के सुझाव से सब पक्षी सहमत हो गये और वे साधु की तलाश में निकल पड़े। लगभग एक घंटे के प्रयास के बाद साधु मिला तो सबसे पहले मनकू मोर उसके पैरों में गिरकर माफी मांगने लगा कि—"महात्मा जी, मुझसे गलती हो गयी। मुझे माफ कर दो।" फिर सभी पक्षी एक साथ बोले, "महात्मा जी, मनकू मोर जिद्दी स्वभाव का है। यह किसी काम को करने या न करने की जिद् कर लेता है तो उसे पूरा करके ही छोड़ता है। हमने इसे बहुत समझाया, लेकिन यह माना ही नहीं। अब इसकी तरफ से हम सब माफी मांग रहे है। कृपया माफ कर दीजिये और इसके पैर ठीक करके उस तालाब के पानी का भी कुछ इलाज कीजिये महाराज।"

साधु बोला, "प्यारे पक्षियों, मनकू मोर के पैरों का मेरे पास अब कोई इलाज नही है। इसे अपनी जिद् का फल मिल गया है।"

"लेकिन महात्मा जी, उस तालाब के पानी का तो इलाज कीजिये। नही तो न जाने कितने पक्षी गन्दे और भद्दे हो जायेंगे।" कालू कबूतर ने कहा।

साधु बोला, "हां, उस तालाब के पानी का इलाज हो सकता है और वह यह कि मैं अपने तप के बल पर उस तालाब के पानी को बादल बना दूंगा।"

"तो महात्मा जी, तालाब के पानी के बादल बन जाने पर हम फिर पानी कहां से पीयेंगे?" कालू कबूतर ने पूछा।

"यह समस्या भी हल किये देता हूं। ऐसा है, तालाब के उस पानी के बादल बन जाने पर वह बादल तभी बरसेगा, जबकि मनकू मोर नाचेगा।" इतना कहते ही साधु अन्तर्ध्यान हो गया।

कुछ ही देर बाद सभी पक्षियों ने देखा कि आसमान में एक काला बादल मंडरा रहा है। और यह देखकर उन्हें और भी आश्चर्य हुआ कि उस तालाब में एक बूंद भी पानी नहीं था। ऐसी स्थिति में सारे पक्षी चिन्तित हो उठे और मन ही मन मनकू मोर को कोसने लगे।

पल भर की शान्ति के बाद कालू कबूतर मनकू मोर से बोला, "मनकू भैया, तुम अगर जिद्द नहीं करते तो इतनी दिक्कत क्यू होती ? अब एक काम तो कर दो ताकि सभी पक्षी आराम से रह सकें।"

"कौन-सा काम करू ?" मनकू मोर ने उदासी से पूछा। "करना क्या है ? बस थोड़ा-सा नाचकर दिखा दो ताकि बादल बरस जाये और यह तालाब पानी से भर जाये। नहीं तो हम सब पक्षी प्यासे मर जायेंगे।" कालू कबूतर ने कहा।

कालू कबूतर के इतना कहते ही मनकू मोर ने अपने पंख फैलाकर नाचना शुरू किया तो रिमझिम-रिमझिम बरसात आनी शुरू हो गयी। बरसात इतनी शुरू हुई कि सारा तालाब फिर से भर गया। यह देखकर सारे पक्षी खुशी से चहचहाने लगे। तब मनकू मोर अपने पंखों को समेट, नाचना बन्द करके, उदास-सा होकर एक पेड़ के नीचे ...र अपने पैरों की तरफ देखकर रोने लगा।

बड़ों की भूल

निशान्त

योगेश अपने भाई-भाभी के पास रहकर पढ़ रहा था। यह ठीक है कि भाई-भाभी उतना प्यार नहीं दे पा रहे थे जितना कि मां-बाप दे पाते। लेकिन यह बात भी नहीं थी कि उसकी कोई आवश्यकता पूरी न हुई हो। समय पर उसकी वर्दी सिलवा दी जाती थी। समय पर फीस जमा करा दी जाती थी। यदा-कदा मांगने पर स्याही, पेन-पेन्सिल के लिए भी पैसे मिल जाते थे। हां! जेब-खर्च के लिए उसे कभी कुछ नहीं मिलता था। यह स्नेह की कमी की वजह कह लो या फिर उसके भाई की गरीबी की वजह कह लो। उसका भाई रेलवे में एक साधारण मजदूर था।

योगेश कस्बे के सरकारी स्कूल में पढ़ता था। उसके साथी भी लगभग उन जैसी ही सामाजिक और आर्थिक स्थिति वाले थे। उनमें से अधिकांश को जेब-खर्च नहीं मिलता था। यही वजह थी कि उनकी स्कूल के आगे खोमचे वाले अपना डेरा नहीं जमाते थे। दस-पन्द्रह लड़के जो आधी छुट्टी में कोई चीज खरीद पाते थे, बाजार में निकल जाते थे। वहीं से वे कुल्फी, गोली, टॉफी, बेर इत्यादि खरीद कर खाते थे।

अपने कुछ साथियों को चीजें खाते देखकर योगेश का जी भी ललचा जाया करता था। लेकिन भाई-भाभी से पैसे मांगते हुए हमेशा डर लगता था। ऐसे मौके पर यह कल्पना किया करता कि काश! यह भाई-भाई न होकर उसका बाप होता और यह भाभी उसकी मां होती। फिर तो वह रूठ कर भी उनसे पैसे मांग लेता। फिर तो वे उसे भी उतना ही प्यार करते, जितना कि उसके भतीजे को करते हैं।

एक बार योगेश ने देखा कि घर के भीतर अंगीठी पर एक पुरानी घड़ी कई दिनों

से पड़ी है। उसने सोचा—यह उठा लूँ और चुपके से कहीं बेच दूँ तो मुझे काफी पैसे प्राप्त हो जाएगें। उन पैसों से धीरे-धीरे चीजें खरीद कर खाता रहूंगा। यह सोचकर वह चुपके से घड़ी स्कूल में उठा लाया। वहाँ अपने एक साथी के आगे घड़ी होने की बात चलाई।

साथी ने कहा—घड़ी तो हम ले लेंगे। मेरे पिताजी मेरे बड़े भाई को घड़ी खरीद कर देने वाले हैं।

योगेश पूरी छुट्टी के बाद घडी दिखाने के लिए अपने उस साथी के घर चला गया। साथी के पिता ने घड़ी देखी। कुछ सोचा, और कहा—बेटा, आज तुम यह घड़ी मेरे पास छोड़ जाओ। मैं बाजार मे इसे किसी घड़ीसाज को दिखाकर इसकी स्थिति जान लूगा फिर जितने पैसों की यह होगी उतने हम तुम्हे दे देगे। योगेश मान गया और घड़ी बिक जाने की खुशी में घर आ गया।

योगेश के साथी के पिता काफी समझदार और ईमानदार आदमी थे। उन्होंने एक बच्चे को यू घड़ी बेचते देखकर झट से ताड़ लिया कि हो न हो यह घडी घर से चुराई हुई है।

वे दूसरे दिन घडी लेकर स्कूल में आ गए। उन्होने सारी बात हैडमास्टर जी को बताई। हैडमास्टर जी ने योगेश को दफ्तर मे बुला लिया। हैडमास्टर जी के हाथ मे घड़ी देखते ही वह समझ गया कि उसकी चोरी पकड़ी गयी है। उसकी सासे सूख गयी। लाल मुह एक दम पीला पड़ गया। वह बिना मारे ही रोने लगा। उसे अपने भाई को बुलाकर लाने के लिए कहा गया तो और भी अधिक जोर से रोने लगा और हाथ जोड़ कर विनय करने लगा—गुरुजी मेरे भाई को न बुलाओ। मैं चुपचाप घडी वही रो जाकर रख दूँगा।

"नही, हम तो जरूर बुलाएगे। इस प्रकार तुझे छोड दिया तो तुझे तो चोरी की आदत पड़ जाएगी।"

"नही! गुरुजी, मैं कभी भी चोरी नही करूंगा। मुझे अब पता चल गया है कि चोरी पकड़ी जाती है।"

लेकिन हैडमास्टर जी गुस्से में थे। नही माने सो नहीं माने। उन्होंने बच्चे के अभिभावक को सूचित करना उचित समझा और दूसरे लड़कों को कह दिया कि शाम को उनके घर जाकर कह देना कि उनकी घडी स्कूल मे पड़ी है। कल स्कल में आकर ले जायें।

योगेश छुट्टी होने तक सुबकता रहा। उसे भय था कि पता चलने पर उसका भाई उसे बहुत पीटेगा।

अगले दिन योगेश स्कूल में नहीं आया, उसका भाई जरूर आया। दूसरे लड़कों के द्वारा योगेश की चोरी का पता चल गया था।

योगेश के भाई ने जब हैडमास्टरजी को बताया कि योगेश कल शाम को छुट्टी होने के बाद घर नहीं गया और इधर-उधर देखने पर भी कहीं नहीं मिला है तो उन्हें बहुत दुःख हुआ। उनकी थोड़ी-सी भूल के कारण एक मासूम बच्चा घर से भाग गया था। वे पश्चात्ताप करने लगे कि न जाने वह कहाँ गया है? इस प्रकार से भागे हुए बच्चों का गलत फायदा उठाने वाले कितने ही लोग समाज में मौजूद है। अभी आशा की एक किरण बाकी थी। शायद योगेश भाग कर अपने गांव ही गया हो।

लेकिन चार-पांच दिन बाद वहां से उसका बाप भी जब उसे ढूढ़ता हुआ स्कूल में आ पहुंचा, तो वह आशा भी मिट गयी। अब तो हैडमास्टरजी और भी अधिक दुःखी हो गए। वे सोच रहे थे कि काश! मैं योगेश पर विश्वास कर लेता और उसे अपनी भूल सुधारने का मौका दे देता।

□

हाथी की कर्तव्य परायणता

बसन्तीलाल सुराना

यह घटना केरल राज्य की है। वहां पर वर्ष के नौ माह तो बरसात ही होती है। करीब-करीब हर घर के पास पोखरें होती हैं। घने जंगलो मे हाथी विचरण करते हैं। हाथी ही लकड़ी के लट्ठे को एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाकर नदियों मे डालते हैं। वहां हर मंदिर मे अपना पालतू हाथी होता है। हाथी को इस प्रकार प्रशिक्षित करते हैं कि वह देव पूजन में भी योगदान करता है।

एक समय एक मदिर के पुजारी उसके बच्चे को एक महावत के साथ अपने हाथी पर लेकर दूसरे गाव रवाना हुए। वे पगडडी पर चले जा रहे थे। चारों ओर घना जंगल था। ऊंचे-ऊंचे पेड़ होने के कारण यकायक अधेरा छा गया। इसी समय पुजारी का बच्चा रोने लगा। मां ने बच्चे को चुप करते हुए पुजारी से पानी की मांग की। महावत ने हाथी को वही रोका। उसके पांव को चेन से बाध कर वृक्ष के बाध दिया और वह पानी लेने चला गया। पुजारी व उसकी पत्नी वही वृक्ष के नीचे इन्तजार करने लगे। जब कुछ देर बाद भी महावत नहीं आया तो दम्पति बड़े चिन्तित हुए कि कही वह जंगल मे खो नहीं जाय। अतः पुजारी महावत को आवाज देने जंगल मे आगे बढा। अब तक बच्चा सो चुका था। पति के वापस-आने में विलंब देखकर वह उस बच्चे को जंजीर की परिधि से दूर वृक्ष के नी[illegible] को आवाज देने चली गयी।

[illegible] मे एक लकड़बग्गा निकला। वह सोते हुए बच्चे को देख कर उसे [illegible] का प्रयत्न करने लगा। वह आगे बढ़ा। यह सब हाथी देख रहा
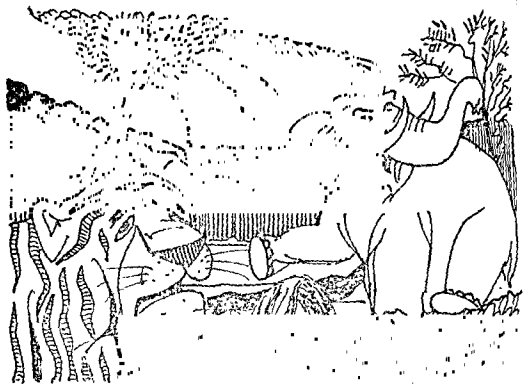
था। जंजीर जितनी इजाजत देती थी वह उतना नजदीक पहुंच कर सूंड से उस लकड़-बग्गे को भगाने का प्रयत्न करता रहा। हाथी एक ओर से सूंड से भागता तो लकड़बग्गा दूसरी ओर जाकर बच्चे को उठाने को कोशिश करता। हाथी लगातार उस बच्चे को बचाने की कोशिश करता रहा। उसने लकड़बग्गे को भगाने की चेष्ठा की लेकिन उसके पांव में पड़ी जंजीर उसको बालक तक नही पहुंचने दे रही थी। इतने में लकड़बग्गे के तीन चार साथी और आ गये और उन्होने सम्मिलित आक्रमण शुरू कर दिया। हाथी सूंड को चारों तरफ जोरों से हिला-हिला कर भी बच्चे को नहीं बचा पा रहा था। हाथी ने तुरन्त बुद्धि से काम लिया। वह वृक्ष की एक डाली तोड़कर सूंड में पकड़ कर जोरो से हिला-हिला कर उन पर प्रहार कर बच्चे को बचाने का प्रयत्न करता रहा। हाथी अब चिंघाड़

चिंघाड़ कर उनको बच्चे से दूर करने का प्रयत्न कर ही रहा था कि महावत, पति व पत्नी सभी उसकी चिंघाड़ सुन कर आ गये। मां ने आते ही बच्चे को बाहों में ले लिया, महावत व पति ने उन लकड़बग्घों को भगाया। उन्होंने देखा बच्चे को बचाने के प्रयत्न में हाथी के शव में बड़ा घाव हो गया है तथा खून रिस-रिस कर जमीन को तर कर रहा है। उन्होंने श्रद्धा से हाथी को नमन किया। मंदिर में पहुंच कर जब इस घटना की सूचना मंदिर के न्य सदस्यों को दी तो वे हाथी के इस उपकार से बड़े प्रभावित हुए। उस मंदिर का वह थी पूजा और मंदिर के जुलूसों में आकर्षण का केन्द्र बन गया।

□

सुगन्ध

भगवतीलाल शर्मा

अपनी धकाऊ साइकल पर आधे बोरे जितना बस्ता लटकाकर आज कितने ही दिनों बाद घीसु मंदिर के सामने से गुजरा। भगवान को प्रणाम उसे नहीं करना था, पर मंदिर के समीप आते-आते उसके ध्यान मे आया—अरे, अरे, इस भोले ठाकुर ने उसका क्या ले लिया, यह तो सबका है, सबकी मदद करने वाला। वह साइकल से उतरा और मंदिर के आगे हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। तभी उसकी नजर मंदिर से लगे चबूतरे पर बैठ एक सात वर्ष के बच्चे पर पड़ी। वह पुजारी का बेटा था—उस पुजारी का जिसने, घीसु को मंदिर पर देखकर झिड़क दिया था—रे छोरे! मदिर के नीचे जा। उस दिन उसको अपने चमार होने का मतलब समझ में आया और उस दिन से यह समझाने वाला पुजारी उसके दिल में कांटे की नाई चुभने लगा।

उसकी चुभन भरी नजर उस बच्चे की ओर गई। बच्चा हल्के से मुस्कराया। उस सुनहरी पूपीया धूप में उसका चेहरा खिले हुए गुलाब जैसा उसे दिखाई दिया। मुंह बना कर जैसे ही वह साइकल पर चढ़ने को हुआ, संगीत की लय-सा स्वर उसके कानों से टकराया—दा···दा। प्यार से इतना लबालब भरा शब्द उसने पहली बार सुना। उसके तन-मन में सिहरन-सी दौड़ गई। वह रुक गया, और मंत्रमुग्ध-सा उसकी ओर देखने लगा। उसकी इच्छा हुई कि वह उस बालक को अपने पास बुलाये, उससे हाथ मिलाये, उसको अपना दोस्त बनाये। उसने पूछा—

"तेरा सोहन नाम है ना ?"

"हाँ।"

"डॉक्टर ने तेरा पांव काटा है ना ?"

"हां।" सोहन का मुंह फक् से उतर गया। जैसे फूल को पाला खा गया।

सुनकर घीसु का मन भी उदास हो गया, जैसे उसकी भी पकी-पकाई फसल नष्ट हो गई हो। वह साइकल खड़ी कर उसके पास आया। कटी हुई टांग पर लटक रहे पजामे को ऊपर किया। देखते ही हल्की-सी चीख निकल गई उसके मुंह से। कैसा छीलकर रख दिया है निर्दय डॉक्टर ने, जैसे सुथार गीली लकड़ी को वसोले से छीलकर गोल बना देता है।

"दुखता है ?"

"हां, थोड़ा-थोड़ा।"

"साइकल पर घूमेगा ? लेकिन मैं तो अभी स्कूल जा रहा हूं। शाम को घुमाऊंगा तुझे, हां। देख, यहीं मिलना। मिलना हो।"

स्कूल में उसकी आंखें सोहन की सूरत और उसकी वह टांग ही देखती रहीं। उसके कान केवल उसका वह शब्द "दादा" ही सुनते रहे। वह छटपटाता रहा और केवल घंटी होने का इन्तजार करता रहा।

घंटी होते ही वह खेल के मैदान की ओर न जाकर गांव की ओर मुड़ गया। दो किलोमीटर का रास्ता, रास्ते में फिर नाला, इस पर भी उसे दस मिनट से ज्यादा समय नहीं लगा।

सोहन उसे वहीं बैठा मिल गया। उसे उठाकर उसने साइकल पर बैठाया, और गांव में घुमाने लगा। सोहन की प्रसन्नता ने उसे इतना आनन्दित किया कि वह समय की गति ही भूल गया। अंधेरा होने पर ही वह सोहन को छोड़कर अपने घर जा पाया।

घीसु के लिए रोज का क्रम हो गया यह। सोहन से मिलकर स्कूल जाता और स्कूल से आकर सोहन को घुमाकर घर जाता। सुबह जब छोड़कर जाता है, सोहन का चेहरा कितना ताजगी भरा होता है। शाम को जब लौटता है, वही चेहरा कितना मलिन, कितना थका हुआ, कितना ऊब से भरा मिलता है। घीसु को देखते ही उसके उस चेहरे पर झर-झर झरते हुए झरने जैसी प्रसन्नता आने लगती है। दिन में कोई उसके पास बैठने वाला नहीं। कोई उसके साथ खेलने वाला नहीं, कोई उससे दो बोल बोलने वाला

नही। उल्टे मोहल्ले के लड़के उसे "ऐ रे खोड़े" ऐ रे लंगड़े" कहकर चिढ़ाते रहते हैं। वह सुबकता जाता है, वे चिढ़ाते रहते हैं। वह रोता रहता है, वे तालियाँ बजाते रहते हैं। घीसु का वश चले तो ऐसे तमाम लड़कों को गाँव के बाहर कर दे, पर क्या करे घीसु! ये सब-के-सब पण्डित-पटेलों के लड़के हैं, जिनसे उलझने की सजा उसने गये साल भवानी चमार को जलती हुई घास की गरी के रूप में देखी है, जबकि उसका कसूर केवल इतना-सा था—उसने रामा पटेल पर घास की चोरी का इल्जाम लगा दिया था। वह सोहन को अपने घर भी तो नही ले जा सकता। तब तो वह जिन्दा भी नही बचेगा शायद। वह भी सोहन को थोड़ी देर घुमाता है, उसमें भी वह काँप-काँप जाता है।

आज बुधवार था और पुस्तकालय से पुस्तकें लेने की बारी उसकी कक्षा की थी। अपने लिये पुस्तक पसन्द करते उसे सहसा सोहन का ख्याल आ गया और उसने एक चित्र-कथा की पुस्तक अपने लिये चुनी। "अरे, ऐसी किताबें तो बच्चों के लिये होती हैं, तू क्या करेगा इसका बता तो?" पूछा था गुरुजी ने।

"मैं"…एकाएक उसे कोई जवाब नही सूझा था—"मैं वो अपना छोटा भाई है ना गुरुजी, उसके लिए ले रहा हू।"

"अच्छा, वो स्कूल आने जैसा नही है क्या?" गुरुजी का ध्यान दूसरे छात्र की ओर चला गया, इसलिये वह उत्तर देने से बच गया।

आज तो वह सोहन को आश्चर्यचकित कर देगा। कितना खुश होगा वह आहा! दिन भर बैठा-बैठा किताब पढ़ता भी रहेगा, चित्र भी देखता रहेगा। अरे हाँ, जो लड़के उसे चिढ़ाते हैं वे भी किताब देखने के लोभ में उसके दोस्त बन जायेंगे। मैं गुरुजी से कहकर रोज नई-नई किताबें उसे ले जाकर देता रहूंगा। क्या आइडिया आया रे घीसु, शाबाश तू। सोहन का सारा लफड़ा, सारा झगड़ा खतम, वाह!

और वास्तव में किताब देखते ही मारे हर्ष के सोहन का मुंह और आंखे फटी की फटी रह गई।

"मेरे लिये है क्या दादा?"

"बिल्कुल तेरे लिये। देख है ना बढ़िया! कित्ते सुन्दर-सुन्दर चित्र हैं! देख-देख ये छोटे से राम और रावण कित्ता मोटा" और इस चित्र में देख म…

नहीं। उल्टे मोहल्ले के लड़के उसे "ऐ रे खोड़े" ऐ रे लंगड़े" कहकर चिढ़ाते रहते हैं। वह सुबकता जाता है, वे चिढ़ाते रहते हैं। वह रोता रहता है, वे तालियाँ बजाते रहते हैं। घीसु का बश चले तो ऐसे तमाम लड़कों को गाँव के बाहर कर दे; पर क्या करे घीसु! ये सब-के-सब पण्डित-पटेलों के लड़के हैं, जिनसे उलझने की सजा उसने गये साल भवानी चमार की जलती हुई घास की गरी के रूप में देखी है, जबकि उसका कसूर केवल इतना-सा था—उसने रामा पटेल पर घास की चोरी का इल्जाम लगा दिया था। वह सोहन को अपने घर भी तो नही ले जा सकता। तब तो वह जिन्दा भी नहीं बचेगा शायद। वह तो सोहन को थोड़ी देर घुमाता है, उसमें भी वह काँप-काँप जाता है।

आज बुधवार था और पुस्तकालय से पुस्तकें लेने की बारी उसकी कक्षा की थी। अपने लिये पुस्तक पसन्द करते उसे सहसा सोहन का ख्याल आ गया और उसने एक चित्र-कथा की पुस्तक अपने लिये चुनी। "अरे, ऐसी किताबें तो बच्चों के लिये होती हैं, तू क्या करेगा इसका बता तो?" पूछा था गुरुजी ने।

"मैं"...एकाएक उसे कोई जवाब नहीं सूझा था—"मैं वो अपना छोटा भाई है ना गुरुजी, उसके लिए ले रहा हू।"

"अच्छा; वो स्कूल आने जैसा नहीं है क्या?" गुरुजी का ध्यान दूसरे छात्र की ओर चला गया, इसलिये वह उत्तर देने से बच गया।

आज तो वह सोहन को आश्चर्यचकित कर देगा। कितना खुश होगा वह हा हा! दिन भर बैठा-बैठा किताब पढ़ता भी रहेगा, चित्र भी देखता रहेगा। अरे हाँ, जो लड़के उसे चिढ़ाते हैं वे भी किताब देखने के लोभ में उसके दोस्त बन जायेंगे। मैं गुरुजी से कहकर रोज नई-नई किताबें उसे ले जाकर देता रहूंगा। क्या आइडिया आया रे घीसु, शाबाश तू! सोहन का सारा लफड़ा, सारा झगड़ा खतम, वाह!

और वास्तव में किताब देखते ही मारे हर्ष के सोहन का [illegible] फटी रह गई।

"मेरे लिये है क्या दादा?"

"बिल्कुल तेरे लिये। देख है मा

ये छोटे से राम और रावण कित्ता [illegible]

उसके पास बैठ गया—"तू चित्र देखने भी रहना और इसके नीचे लिखे अक्षर पढ़ते भी रहना।"

इस बात पर मास्टर की आँखें किताब से हटकर घीसु के चेहरे पर अटक गई—"मुझे पढ़ना तो आता ही नहीं।"

ये सारी स्कीम फेल हो गई घीसु तेरी। कुछ पल की चुप्पी के बाद हठात् उसकी आँखें चमकीं —"तो क्या हो गया। अरे, घीसु है किसलिये! मैं एक मिनट के सौवें भाग में पढ़ा दूंगा तुझे। महीने भर मे फर्राटे से किताब पढ़ने लगेगा तू, हां।"

और उसने अपनी कापी और पैन निकालकर उसे पकड़ा दिया।

दूसरे दिन प्रधानाध्यापक ने उसे बुलाया—"क्यों जी, तुम तो कह रहे थे मेरे भाई वाई नही है।"

घीसु कुछ समझ नही पाया। प्रधानाध्यापक ने उसे याद दिलाया—"लाइब्रेरी से तुम वह किताब किसके लिए ले गये थे ?"

"जी, वो···वो·· सर।" उसे तत्काल सब याद आ गया। सारी बात उसने उनको समझा दी। प्रधानाध्यापक का चेहरा नरम होकर भावुक हो गया—"अरे, तो तू पागल उसे स्कूल क्यों नहीं लाता ? तेरे पास साइकल है, फिर सोचता क्या है। हम उसके नकली टाग लगवा देंगे, उसे स्कोलरशिप दिलवा देंगे, उसे अच्छा इन्सान बना देंगे, उसको अच्छी नौकरी लगवा देंगे। अरे, ऐसे बच्चो पर तो सरकार जान दे रही है, तुझे कुछ मालूम भी है। उसके पिता को बताना मेरी बात ? न माने तो मैं चलूंगा तेरे साथ। अरे, तू कल से ला रहा है न, उसे ! बहुत अच्छा लड़का है तू। शाबास मेरे बेटे !"

अगले दिन, स्कूल की पहली घण्टी हो गई, दूसरी भी हो गई। बच्चो की उपस्थिति भी हो गई और वे प्रार्थना के लिये जम भी गये। प्रधानाध्यापक की नजरें इधर से उधर कोई दस बार घूम गईं—घीसु का क्षितिज तक पता नही था। बच्चे को लाने के चक्कर मे कहीं अपना बच्चा न चला जाय, वे सोचने लगे।

एक क्षण बाद ही घीसु गेट में घुसता हुआ नजर आ गया। उनकी साइकल के पीछे एक छोटा बालक बैठा है। प्रधानाध्यापक की बांछें खिल उठी। वे भागकर सामने

जाना चाहते थे, पर चल रही प्रार्थना का ख्याल आ गया।

प्रार्थना खतम होने की देर थी। घींसु को पास बुलाकर उन्होंने सीने से लगा लिया—"शाबाश, देर से आया मगर दुरुस्त आया। ले आया इसे। कितना प्यारा बच्चा है, नहीं ?"

"तू तो मेरा बेटा है रे!" घींसु के कंधे पर हाथ रखकर उन्होंने सबको बताया—"इस बालक को देख रहे हैं न आप! घींसु लाया इसे। घींसु रोज लायेगा इसे। इसी को तो देश बनाना कहते हैं।"

सब लोग आज घींसु को कुछ और ही नजर से देख रहे थे।

□

अमित की हंसी

बसन्ती सोलंकी

"मैं अन्दर आ सकता हूं सर ?" मोहन ने कक्षा के दरवाजे पर आकर पूछा। कक्षा चल रही थी। अध्यापक विज्ञान की पुस्तक पढ़ा रहे थे।

"अन्दर आ जाओ मोहन," अध्यापक ने मोहन की तरफ देखते हुए कहा।

कक्षा मे अपनी सीट पर बैठे हुए अमित ने मोहन को देखा, तो उसके मुह से हंसी छूट गई...ही... ही...ही...

"अरे अमित, इसमे हंसने की क्या बात है ?" उसके पास बैठे हुए राजीव ने टोकते हुए कहा।

"देखते नही राजीव, यह तैमूरलंग किस तरह चलता है !"

"लेकिन हमे किसी की मजबूरी पर हसना नही चाहिए।" राजीव ने उसे, सलाह दी। लेकिन अमित फिर जोर से हस पड़ा मोहन ने अमित की ओर देखा और बैसाखी के सहारे एक खाली सीट की ओर बढ़ गया। मोहन एक पैर से लगड़ा था। पिछले वर्ष ही वह एक दुर्घटना में अपनी टाग गवा बैठा था मोहन इस स्कूल मे आज ही भर्ती हुआ था।

अध्यापक ने अमित को हसते हुए देख लिया था। बोले, "अमित, तुम खड़े हो जाओ, तुम्हें शरम नही आती, किसी की मजबूरी पर हसते हो, जानते हो, इसकी एक टाग कैसे टूटी ? पिछले वर्ष ही एक नन्हीं लड़की जब सड़क पार कर रही थी, तभी एक टैक्सी तेज गति से सामने आ रही थी। मोहन ने लपककर उस लडकी को खीचकर बचा लिया। लेकिन स्वयं दुर्घनाग्रस्त हो गया। उसकी एक टाग टैक्सी के नीचे बुरी तरह कुचल गई और यह अपनी एक टांग गंवा बैठा..." कुछ पल रुककर अध्यापक फिर बोले, "अमित तुम्हारे हंसने की सजा यही है कि आज तुम सारे पीरियड में खड़े रहोगे।"

अमित को सारे पीरियड तक खड़ा रहना पड़ा।

अमित आठवीं कक्षा का छात्र था। पढ़ने-लिखने में होशियार था। खेलने-कूदने में भी वह आगे था। पूरे स्कूल में वह अच्छा अभिनेता था। लेकिन बस उसकी एक यही बुरी आदत थी···वह बात-बात पर हंसता था। कभी वह किसी की चाल पर हंसता, तो कभी फिल्मी हास्य कलाकारों की नकल उतारकर स्वयं ही हंसने लगता। कभी कक्षा में वह किसी छात्र को सजा मिलने पर हंसता, तो कभी बिना बात—बेवजह ही हंस पड़ता! अमित सोचता था कि उसके जैसा हंसमुख छात्र पूरे स्कूल में नहीं होगा। उसके कुछ खास मित्र हमेशा उसके हंसने की तारीफ करते थे। इसलिए हंसने को वह एक अच्छी आदत समझता था। लेकिन अमित यह नहीं जानता था कि उसके ये मित्र उसकी हंसी की सिर्फ इसलिए अधिक तारीफ करते हैं, क्योंकि वह आधी छुट्टी में अक्सर उन्हें अमरूद, आइसक्रीम या गरमागरम समोसे खिलाता है।

एक दिन उसकी स्कूल के सबसे मोटे छात्र राजेश का छाता तेज हवा के कारण हाथ से छूट गया। राजेश छाते को पकड़ने के लिए दौड़ा। छाता उड़ता-लुढ़कता बहुत दूर एक झाड़ी से टकराकर रुक गया। राजेश लगातार छाते को लाने के लिए दौड़ रहा था। राजेश को इस तरह दौड़ता हुआ देखकर अमित जोर से हंस पड़ा, "हा···हा···हा···देखो महेश, यह मोटा कैसा दौड़ रहा है। ऐसा लगता है। जैसे मैदान में कोई गेंद लुढ़क रही हो।"

महेश को उसकी यह हंसी अच्छी नहीं लगी। "अमित, राजेश मेरा मित्र है। तुम्हें उस पर हंसना नहीं चाहिए। कल यदि तुम्हारा छाता इस तरह उड़ जाए और हम तुम पर हंसें, तो तुम्हें कितना बुरा लगेगा?"

"मैं जानबूझकर उस मोटू पर कहां हंस रहा हूं? मुझे तो उसे दौड़ते देख अपने आप ही हंसी आ गई।" यह कहकर अमित ने राजेश की ओर नज़र दौड़ाई। राजेश ठोकर खाकर गिर पड़ा। अमित ने फिर अपनी बत्तीसी दिखा दी। महेश को बुरा लगा। वह चुपचाप राजेश के पास जा पहुंचा, और उसे सहारा देकर उठाया। महेश ने अमित से बात करना छोड़ दिया!

अमित की हंसी के कारण स्कूल के कई छात्र परेशान थे। अमित के मम्मी-पापा भी इस हंसने की आदत से उससे नाराज़ रहते थे। जब भी घर में कोई मेहमान आता, तो

अमित उनसे बातें करते-करते अनायास ही हँस पड़ता। मम्मी-पापा समझाते, तो वह कहता, "जिंदगी में मनुष्य को सदैव हँसते रहना चाहिए। अब तो विज्ञान भी कहता है कि हँसने से उम्र बढ़ती है।"

इस वर्ष "जिला स्तरीय वार्षिक खेलकूद प्रतियोगिता।" अमित के स्कूल में ही हो रही थी। प्रतियोगिताएं शुरू हो गईं। खेलकूद प्रतियोगिताओं की समाप्ति के बाद स्कूल के सांस्कृतिक कार्यक्रम शुरू होने वाले थे। अमित पिछले दो वर्ष से स्कूल के नाटकों में भाग लेता आया था। और हर बार उसका नाटक प्रथम आता था। पिछले वर्ष ही उसे "सर्वश्रेष्ठ कलाकार" का खिताब मिला था। अमित की अभिनय कला पर पूरे स्कूल को गर्व था।

इस बार अमित और उसके साथी कलाकारों से सारे स्कूल को काफी उम्मीदें थीं। सबका ख्याल था कि उनका नाटक जिले भर के स्कूलों के नाटकों में प्रथम आएगा।

अध्यापक ने दस दिन पहले से ही अमित और उसके साथियों से नाटक की तैयारी आरंभ करवा दी थी। प्रतिदिन दो घंटे तक उन्हें रिहर्सल करनी पड़ती थी। अमित और उसके साथियों ने काफी मेहनत की। नाटक के संवादों को तोते की तरह रट लिया था कहाँ कैसा भाव प्रकट करना है, कहा गुस्सा दिखाना है, कहा दुःख प्रकट करना है··· सारी बातें उन्होंने अच्छी तरह समझ ली थीं।

आज स्कूल में सांस्कृतिक कार्यक्रम था। इस कार्यक्रम को देखने के लिए नगर के कई गणमान्य नागरिक आए थे। भारी भीड़ जमा थी। अमित के मम्मी-पापा भी कार्यक्रम देखने आए थे। उन्हें तो पूरा विश्वास था कि अमित का नाटक प्रथम आएगा और उसके अभिनय की सभी तारीफ करेंगे।

ठीक सात बजे कार्यक्रम शुरू हुए। एक के बाद एक नाटक प्रस्तुत हुए। तालियों की गड़गड़ाहट से दर्शकों ने नाटकों की सराहना की। पांचवां और आखिरी नाटक अमित और उसके साथियों का था।

नाटक शुरू हो गया। अमित और उसके साथी अपनी-अपनी भूमिका बखूबी निभा रहे थे, नाटक का अंत निकट था। अब अमित को बड़ी मार्मिक भूमिका अदा करनी थी। वह पूरी तरह तैयार था। निर्देशक का आदेश मिलते ही अमित ने फिर मंच पर प्रवेश

किया—बिल्कुल उदास और गुमसुम ! उसे उदास ही तो रहना था, क्योंकि नाटक में उसकी माँ बीमार थी। जो एक पलंग पर लेटी हुई थी। उसका मित्र सुरेश मां का अभिनय कर रहा था। सुरेश को साड़ी पहने औरत के भेष में देखकर उसे हंसी आने लगी, लेकिन किसी तरह उसने अपनी हंसी रोक ली और बीमार मां के पास जाकर स्टू पर बैठ गया।

"बे…टा · पानी लाना…" सुरेश ने औरत की आवाज निकालते हुए कहा। इ बार अमित अपनी हंसी रोक न सका। और बजाय उठकर एक गिलास पानी देने वह खिलखिलाकर हस पडा ! निर्देशक बुरी तरह चौक गया। उसने पर्दे की ओट में झांककर कहा, "हंसता क्यों है ? पानी पिला मां को।"

लेकिन अमित की हंसी रुक नही पाई। वह और जोर से हंस पड़ा। एक बार हंसी शुरू होने के बाद रुकनी मुश्किल थी !

आखिर निर्देशक झल्ला गया और उसे परदा गिराना पड़ा ! दर्शकों में काफी हो-हल्ला मच गया।

अमित की हसी के कारण नाटक पूरा नहीं हो पाया ! प्रधानाध्यापक और नाटक के सयोजक ने अमित को बुरी तरह डाटा। अमित के मित्रों ने भी उसे बुरा-भला कहा… अमित को भी बहुत दु:ख हुआ… ओह ! सिर्फ मेरी हंसी के कारण सारी मेहनत पर पानी फिर गया !

घर आया, तो मम्मी-पापा की डांट भी खानी पड़ी, न जाने तेरी हंसी की आदत कब जाएगी ! देख लिया तूने अपनी हंसी का नतीजा ! इतना बढ़िया नाटक चल रहा था। सभी तेरे अभिनय की तारीफ कर रहे थे…और तू ने अंत में हंसकर सारा खेल ही बिगाड़ दिया !"

"मम्मी, मैं तो चाहते हुए भी अपनी हंसी को रोक नही पाया।" अमित ने कहा, और वह फिर हँस पड़ा।

□

जनेऊ का सदुपयोग

श्याममनोहर व्यास

हिंदी के प्रसिद्ध लेखक "सरस्वती" पत्रिका के सम्पादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी एक दिन खेतों से वापस गांव लौट रहे थे तो उन्हें रास्ते में एक दर्द भरी चीख सुनाई दी। वे ठिठक कर रास्ते में ही खड़े हो गये !

उन्होंने अपने साथ चल रहे साथी से कहा—"मोहन, जरा पता तो लगाओ, यह चीख किसने मारी है।"

मोहन तुरन्त दौड़ता हुआ उधर ही गया जिधर से चीख सुनाई पडी थी।

मोहन शीघ्र पता लगा कर आया।

उसने कहा कि एक अछूत स्त्री को साँप ने काट लिया है।

"यह तो बहुत बुरा हुआ भैया। चलो हम लोग उसकी सहायता करें।" महावीर भाई ने कहा।

साथी मोहन ने कहा—"नहीं भैयाजी। वह अछूत स्त्री है। हम उसकी कैसे सहायता कर सकते हैं। क्या हमारा धर्म भ्रष्ट नहीं हो जाएगा ?"

यह सुन कर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का पारा चढ गया और उसे फटकारते हुये बोले —"अरे मूर्ख ! धर्म कभी भ्रष्ट नहीं होता। धर्म तो दूसरों की मदद करने के लिये ही है। सेवा धर्म से बढ कर कोई अन्य धर्म नहीं।"

यह कह कर महावीर भाई उधर दौड़ पडे जिधर से चीख आई थी। मोहन देखता ही रह गया।

ी के पाव में साँप ने काटा था। वह पाव को हाथ से पकड़े जोर-जोर से रो

रही थी। पास ही उसका छोटा बच्चा भी कातर दृष्टि से इधर-उधर देख रहा था कि कोई आकर उसकी माँ की सहायता करे।

बच्चे को प्यार से पुचकारा।

साँप का जहर पूरे शरीर में न फैल जाए, इसलिए जहाँ साँप ने काटा था उससे कुछ ऊपर कोई रस्सी कस कर बाँधना आवश्यक था। आचार्यजी के पास कोई रस्सी या अन्य वस्तु नहीं थी। उनका ध्यान अचानक ही अपनी जनेऊ पर गया।

उन्होंने एक झटके से अपना जनेऊ तोड़ा और उससे शीघ्र घाव को कस कर बाँध दिया। साँप के काटे हुये स्थान पर चाकू से चीरा दिया और दूषित रक्त बाहर निकाला ताकि और अधिक जहर शरीर में नहीं फैले।

उन्होंने अपना बनियान फाड़ कर दूषित रक्त को भी साफ किया। इतने में मोहन भी आ गया।

ईद का वह दिन

मुबारक खान 'आजाद'

रमजान माह के तीस रोजे पूरे हुए। ईद का चाँद दिखा तो अगले दिन ईद मनाने की तैयारियां शुरू हो गई। औरतों, मरदों, बूढ़ों और जवानों से ज्यादा बच्चों को खुशी हो रही थी। त्यौहार वैसे भी बच्चों को बहुत प्यारा होता है। इस दिन इन्हें नए कपड़े, नए जूते, ईदी-खिलौने, मिठाइयां पैसे आदि के अलावा अपने वालदैन का प्यार-दुलार भी मिलता है न!

ईदगाह को जा रहे रोजादारों का क्या कहना! इत्र की भीनी-भीनी महक। खुशी से चमकते हुए चेहरे। नए लिबास की सरसराहट। इस भीड़ में बगिया के भिन्न-भिन्न फूलों जैसे रंग-बिरंगे कपड़े पहने फुदकते-चहकते बच्चे।

ईदगाह अभी दूर थी। दो बच्चे सिसकते हुए अपने नानाजान के पास आए। "देखिए तो, हमारे कपडे पुराने है, पैबंद (कारी) लगे है, जबकि औरों के नफीस और नए है।"

"कोई बात नही, आपके कपड़े धुले हुए तो हैं। ये अच्छे लगते हैं बच्चों।" नही, आप हमे बहला रहे है।" दोनों बच्चे एक स्वर मे बोले। उनकी आँखों से टूटते आसू थम नही रहे थे।

नाना ने प्यार से उनके कुरते चूमे और समझाया—"देखो तो हमारे कपड़े भी पुराने है जबकि दूसरों के नए है। देखो सबको देखो..."

बच्चों ने ईदगाह को जा रही नमाजियों की टोलिया गौर से देखी। वाकई सभी नए चमचमाते लिबास पहने थे, जबकि उनके नानाजान के कपड़े पुराने और पैबन्द लगे थे।

"खैर, और बच्चे तो ऊंटों पर चढ़ रहे हैं। हमारी सवारी कहां है ?" "आपका ऊंट मैं हूं बच्चो। मेरे कंधों पर चढ़ जाओ यार।" नाना ने दोनों को कंधों पर चढ़ा लिया। बच्चे पुलक उठे। "अहा! हमारा ऊंट लाजवाब है।" वे थोड़ी दूर चुपचाप चले फिर बोल उठे—

"हमारे ऊंट की नकेल नहीं है, नानाजान।"

"है बच्चो। यह देखो। इन्हें पकड़ लो।" नाना ने अपने बाल बच्चों के नन्हे हाथों में थमा दिये। अब तो बच्चों की खुशी का पार नहीं। अपने ऊंट की नकेल खींच खींच कर वे खिलखिलाने लगे। "वाह! ऐसी ईद तो रोज ही आती रहे।"

"मजा आ रहा है। अब तो कोई शिकायत नहीं बच्चो ?" बच्चे कुछ सोचने लगे। उन्होंने दूसरों की सवारियों को ओर ध्यान से देखा। "और तो सब ठीक है। पर हमारा ऊंट बोल नहीं रहा। देखो सामने जा रहे ऊंट किस तरह मस्ती में बोल रहे हैं।"

नाना ने ठहाका लगाया—"लो अब आपका ऊंट भी बोलेगा।" और वे अपनी जीभ निकाल कर जो बोलने लगे तो ईदगाह जा रहे रोजादार चौंके। आसपास के बच्चे भी चकराये। लोग अपनी सवारियों से उतर पड़े और बच्चों के प्रति बड़ों के इस दुलार को जी भर कर निहारने लगे। कंधों पर सवार बच्चों को जो दूसरे बच्चों ने देखा तो वे मचलने लगे। "हम भी आपके कंधों पर चढ़ेंगे।"

और वे सवारियों से उतर कर अपने अब्बा, ताऊ चचा, नाना, बड़ा भाई जो भी हमराह था उसी के कंधों पर उचकने लगे। ईदगाह को जा रहे रोजादारों के इस लश्कर को जिसने भी देखा, खिल उठा। बच्चों को दुलारना एक बड़ी इबादत है। पर कुछ लोग नहीं समझते! खैर, ईदगाह की ऐसी सैर विश्व-इतिहास में दूसरी नहीं मिलती ईद का वह दिन अमर हो गया। बच्चों और उनके वालदैन के लिए एक उदाहरण बन गया।

—

ईद का वह दिन

मुबारक खान 'आजाद'

रमजान माह के तीस रोजे पूरे हुए। ईद का चांद दिखा तो अगले दिन ईद मनाने की तैयारियां शुरू हो गईं। औरतों, मर्दों, बूढ़ों और जवानों से ज्यादा बच्चों को खुशी हो रही थी। त्यौहार वैसे भी बच्चों को बहुत प्यारा होता है। इस दिन इन्हें नए कपड़े, नए जूते, ईदी-खिलौने, मिठाइयां पैसे आदि के अलावा अपने वालदैन का प्यार-दुलार भी मिलता है न!

ईदगाह को जा रहे रोजादारों का क्या कहना! इत्र की भीनी-भीनी महक। खुशी से चमकते हुए चेहरे। नए लिबास की सरसराहट। इस भीड़ में बगिया के भिन्न-भिन्न फूलों जैसे रंग-बिरंगे कपड़े पहने फुदकते-चहकते बच्चे।

ईदगाह अभी दूर थी। दो बच्चे सिसकते हुए अपने नानाजान के पास आए। "देखिए तो, हमारे कपड़े पुराने है, पैवंद (कारी) लगे है, जबकि औरों के नफीस और नए है।"

"कोई बात नही, आपके कपड़े धुले हुए तो हैं। ये अच्छे लगते हैं बच्चों।" नही, आप हमें बहला रहे हैं।" दोनो बच्चे एक स्वर मे बोले। उनकी आंखों से टूटते आंसू थम नही रहे थे।

नाना ने प्यार से उनके कुरते चूमे और समझाया—"देखो तो हमारे कपड़े भी पुराने हैं जबकि दूसरों के नए हैं। देखो सबको देखो…"

बच्चों ने ईदगाह को जा रहो नमाजियो की टोलियां गौर से देखी। वाकई सभी नए चमचमाते लिबास पहने थे, जबकि उनके नानाजान के कपड़े पुराने और पैवन्द लगे थे।

"ख़ैर, और बच्चे तो ऊंटों पर चल रहे है। हमारी सवारी कहां है ?" "आपका ऊंट मैं हूं बच्चो। मेरे कंधों पर चढ जाइये आप।" नाना ने दोनों को कंधों पर चढ़ा लिया। बच्चे पुलक उठे। "आहा! हमारा ऊंट लाजवाब है।" वे थोड़ी दूर चुपचाप चले फिर बोल उठे—

"हमारे ऊंट की नकेल नही है, नानाजान।"

"है बच्चो। यह देखो। इन्हे पकड लो।" नाना ने अपने बाल बच्चो के नन्हे हाथो मे थमा दिये। अब तो बच्चो की खुशी का पार नही। अपने ऊंट की नकेल खीच खींच कर वे खिलखिलाने लगे। "वाह! ऐसी ईद तो रोज ही आती रहे।"

"मजा आ रहा है। अब तो कोई शिकायत नही बच्चो ?" बच्चे कुछ सोचने लगे। उन्होने दूसरो की सवारियों को और ध्यान से देखा। "और तो सब ठीक है। पर हमारा ऊंट बोल नही रहा। देखो सामने जा रहे ऊंट किस तरह मस्ती में बोल रहे है।"

नाना ने ठहाका लगाया—"लो अब आपका ऊंट भी बोलेगा।" और वे अपनी जीभ निकाल कर जो बोलने लगे तो ईदगाह जा रहे रोजादार चौंके। आसपास के बच्चे भी चकराये। लोग अपनी सवारियों से उतर पड़े और बच्चों के प्रति बडो के इस दुलार को जी भर कर निहारने लगे। कंधो पर सवार बच्चो को जो दूसरे बच्चों ने देखा तो वे मचलने लगे। "हम भी आपके कधों पर चढ़ेंगे।"

और वे सवारियों से उतर कर अपने अब्बा, ताऊ चचा, नाना, बड़ा भाई जो भी हमराह था उसी के कंधों पर उचकने लगे। ईदगाह को जा रहे रोजादारों के इस लश्कर को जिसने भी देखा, खिल उठा। बच्चों को दुलारना एक बड़ी इबादत है। पर कुछ लोग नही समझते! ख़ैर, ईदगाह की ऐसी सैर विश्व-इतिहास में दूसरी नही मिलती ईद का वह दिन अमर हो गया। बच्चो और उनके बालदैन के लिए एक उदाहरण बन गया।

बच्चो ! जानते हो वे नाना कौन थे ?

"हां...वे थे इस्लाम धर्म के प्रवर्तक पैगम्बर मोहम्मद साहब ! और उनके कंधों पर सवार होने वाले वे दो प्यारे प्यारे बच्चे ? ठीक है । वे थे हसन और हुसैन। नाना-जान के दोहिते। शेरे-खुदा हजरत अली के सुपुत्र।"

राजा भोज का प्रसंग

गौरीशंकर आर्य

उज्जयनी के न्याय प्रिय प्रतापी सम्राट विक्रमादित्य के दरबार में एक महाकवि कालिदास थे। ठीक उसी प्रकार धारा नगरी के राजा भोज के दरबार मे भी कालिदास नाम के एक विद्वान कवि थे। राजा भोज भी विद्वानों का आदर करते थे। उनके ज्ञान और विद्वत्ता की परीक्षा करके उन्हें बहुत दान देते थे। बिना परीक्षा के राजा भोज से दान ले लेना बड़ा कठिन था।

एक बार एक विद्वान किन्तु निर्धन ब्राह्मण को अपनी बेटी के विवाह के लिए धन की आवश्यकता हुई। वह दान लेने के विचार से राजा भोज के पास गया। उसके नंगे धूल भरे पांवों और फटे कपड़ों को देखकर दरवाजे पर खड़े पहरेदारों ने ब्राह्मण को रोक कर उसका नाम, पता और परिचय पूछा। ब्राह्मण ने कहा—मै राजा का मौसेरा भाई हू। मौसेरा याने राजा की माता की बहन का लड़का। पहरेदारों को बड़ा आश्चर्य हुआ। ऐसे बड़े राजा की मौसी क्या इतनी गरीब हो सकती है! लेकिन एक बूढ़े पहरेदार ने कहा—अरे भाई, राजा के परिवार मे कोई गरीब भी हो सकता है! हमारा काम तो राजा को सूचना देने का है। उसी की बात मानकर मुख्य द्वारपाल ने राजा को सूचना दे दी। राजा के सामने जाकर ब्राह्मण ने स्वस्ति वचन कहकर आशीर्वाद दिया। राजा ने पूछा, "आप कौन है और यहां क्यों आये है?" ब्राह्मण ने कहा, "मै अपनी बेटी के विवाह के लिए दान लेने आया हू और आपका मौसेरा भाई हू।" ब्राह्मण की बात पर दरबार मे बैठे सब लोग चकित हो गये। उन्होंने सोचा—यह राजा कितना स्वार्थी है। इसने अपनी मां की बहन की गरीबी को भी दूर नहीं किया। राजा ने भी इसी विचार पर ध्यान दिया,

लेकिन वह तो जानता था कि उसके कोई मौसी नहीं है। फिर भी उसने शान्त मन से पूछा—"आप मेरे भाई किस प्रकार हैं, मेरे तो कोई मौसी नहीं है।" तब ब्राह्मण ने कहा —"राजन्, तुम्हारी और मेरी माता एक ही परमपिता की पुत्रियां हैं। तुम्हारी माता का नाम सम्पत्ति और मेरी माता का नाम विपत्ति है। तुमने विपत्ति को कभी नहीं देखा इसी से तुम मुझे नहीं पहचानते।" राजा के चेहरे पर प्रसन्नता झलक आई। उसने समझ लिया कि ब्राह्मण विद्वान है। परन्तु वह परीक्षा तो लेता ही था। उसने पूछा—"मेरी मौसीजी सकुशल तो हैं, वह कहां है ?"

ब्राह्मण ने तुरन्त उत्तर दिया –"राजन् ! जिस दिन मैं अपने घर से आपके पास आने को चला, उसी दिन उसने लज्जा के कारण आत्महत्या कर ली। वह अब नहीं रही।" सारी सभा वाह-वाह कर उठी। राजा ने सिंहासन से उठकर ब्राह्मण को गले से लगा लिया और उसे बहुत-सा धन दे दिया। ब्राह्मण ने बड़ी चतुरता से यह प्रकट किया था कि दान की इच्छा लेकर जो व्यक्ति राजा भोज के पास जाने का विचार करता है उसी समय से उसकी गरीबी मिट जाती है।

□

ओस की बूंद

इन्दर आज़वा

फूल के आंगन किरण बो गई एक ओस की बूद,
पंखुड़ियों के बीच खो गई एक ओस की बूद।
काले बादल के घर जन्मी गोरी गोरी गुडिया,
हरियाली के पलना सो गई एक ओस की बूद।
आसमान में, इन्द्र धनुष ने, रंग बिखेरे अपने,
लो सतरंगी चूनर हो गई एक ओस की बूद।
इक प्यासा पपीहरा पी गया समझ बूद स्वाति की,
अमराई का गीत हो गई एक ओस की बूंद।

□

सड़क

अब्दुल मलिक खान

बिना रुके बढती रहती है आगे को हर घड़ी सडक।
कभी लेटती, कभी बैठती, कभी दीखती खड़ी सड़क।

गरमी में लू खाती रहती,
गी में।

सड़क।

चल पाती पर्वत पर घूमे,
अंगड़ाई ले घाटी में।
चौराहों पर आँख दिखाए,
पैर जमाये माटी में।
गाँव, नगर को ऐसे जकड़े, जैसे हो हथकड़ी सड़क,

दिन भर जमकर बोझा ढोती
यह मजूर की नारी सी।
शाम पड़े ही लगे ऊँघने,
थकी-थकी सी हारी सी।
कोलतार का शाल लपेटे, बेसुध होकर पड़ी सड़क।

□

बाल-गीत

प्रेम 'चकरध्वज'

डाल डाल पर उड़ती चिड़िया
फूल फूल से तितली बोले।

गाय रंभाती बछड़ा आता
ये किसान खेतों पर जाता
खाता जाता है गुड़धानी
गाये—ओ मेघा दे पानी

धरती पर ज्यों लाल जड़े हों
राम की गुड़िया ऐसे डोले॥

काले काले बादल आये
नन्हीं नन्हीं बूँदें लाये
बिजली नाच रही है छम-छम
अम्बर बोल रहा है धम-धम

काला बादल हटा दूर को
सूरज झांके मुखड़ा खोले॥

लहर-लहर नदिया लहराती
लहर किनारे पर इठलाती
छप-छप बच्चे दौड़ लगाते
कागज की इक नाव बनाते

गली-गली में बहता पानी
नाव एक पानी पर डोले॥

□

पलाश का फूल

शान्तिलाल नौमा

(१)

लाल लाल वह जीभ निकाले,
जाए हवा में झूल।
अंगारे दमके धूल में,
का फूल॥

(२)

मार्च अप्रेल की भरी दुपहरी,
धधक रही हो ज्वाला।
काली मखमली टोपी लगाये,
वह पलाश का फूल ॥

(३)

दोपहरी में खड़ा अकेला
और वृक्षों को शूल।
खिलखिला कर हँसता रहता,
वह पलाश का फूल ॥

(४)

गंधहीन केसरिया रंगी,
पहला है दुकूल।
चिलचिलाती धूप में चमके,
वह पलाश का फूल ॥

□

बुरी नकल औरों की

सावित्री परमार

सूट रीछ से
छड़ी पेड़ से
उल्लू से चश्मा लाये

हैट हिरन से
टाई साप से
लेकर बंदर भाई आये ।

सम्राट शेर की

सब कुछ पहन
देख दरपन में
फूले नहीं समाये।

"दोस्त मांगकर शान दिखाना
बहुत बुरा"—बोला लंगूर
बोला बंदर—"रहा फटीचर
जलता सो घट्टे अंगूर"

दुखी हुआ लंगूर कहा फिर—
"छोड़ो बात अगर नहीं भाये
दोगे क्या उत्तर मित्रों को
बिगड़ जाये या कुछ खो जाये!"

"नानसेंस" बंदर जी ऐंठे
चले अकड़ कर छड़ी उठाकर
दीखा नहीं सामने पत्थर
चित्त गिर पड़े ठोकर खाकर।

टूटा-चश्मा
सूट फट गया
उलझी टाई दांत गंवाये
पिटी शान रोते-लंगड़ाते
लौट के बुद्धू घर को आये…

□

बस्ता

अरविन्द चुरुवी

मुझसे ज्यादा भारी बस्ता है गुरुजी,
ढोते ढोते हालत खस्ता है गुरुजी,
चूहे की पीठ पर लदे, गणेश हो जैसे,
वैसे ही धरा मे जिस्म धँसता है गुरुजी,
'शॅल' को देख, बैल का मैं चित्र बनाता,
अब हालत मेरी देख देख वो हंसता है गुरुजी।
ले आया छोटूलाल 'टेरी कॉट' का थैला,
रेडीमेड मे ये कौन-सा सस्ता है गुरुजी।
पी टी. सी करी, हाथ फैला, पीठ पर डाला,
कुली-सा नापें, स्कूल का रस्ता है गुरुजी।

□

फूल और धूल

जयसिंह चौहान 'जोहरी'

कपड़े कर देती नित मैले,
ये पुस्तक रखने के थैले,
खेलें तो हम कैसे खेलें, बेहद पगली धूल
फर्श बुरा, गंदा कर डाला,

उजला सब कुछ दिखता काला,
धार्ती अपने आप उछाला, बेहद पगली धूल
सदय लगा नल पर नहला दे।
धुला पेण्ट शर्ट पहना दे।
फिर से चल मम्मी बगिया में, मैं तोड़ूंगा फूल।
गुरुओं के चरणों में धरने,
मित्रों का तन-मन खुश करने,
बहिना की झोली में भरने, मैं तोड़ूंगा फूल॥

□

हाथी दादा

रमन गुप्त

(१)

हाथी दादा जंगल में
पानी पीकर चम्बल मे
लड़ने पहुँचे चींटी से
हार गये जी दंगल में॥

(२)

हाथी दादा सरकस में
तीर लगा कर तरकस में
पहुंचे करतब दिखलाने
दौड़ रहा डर नस-नस में॥

(३)

हाथी दादा जाड़े में
बैठे-बैठे बाड़े में
डिस्को सीख रहे थे जी
दे-दे चोट नगाड़े में ॥

□

बन्दर की रेल

गोपालकृष्ण 'निर्झर'

रामू ने एक बन्दर पकडा।
श्यामू ने रस्सी से जकड़ा॥

पीकू आया ढोल बजाने।
रोज उसे वे लगे नचाने॥

हर दिन बन्दर खेल बताता।
बच्चा बच्चा ताली बजाता॥

खूब किया गाँवों मे खेल।
इक दिन वे बन बैठे रेल॥

इंजन बन गया बन्दर आगे।
डिब्बे रामू, श्यामू भागे॥

खेल खेल में इंजन दौड़ा।
डिब्बों को पीछे ही छोड़ा॥
हाथ न आया बन्दर प्यारे।
हाथ मल रहे सब बेचारे॥

बरसो बादल भैया

प्रेम भटनागर

उमड़ घुमड़ कर
छाओ नभ पर
प्यासी धरती,
बरसो झरझर

खाली ताल तलैया
बरसो बादल भैया।

खाली हर घट
खाली पनघट
प्यासा तन मन
प्यासा जन जन

भाभी की आज दुहैया
बरसो बादल भैया।

थोड़ा रुकजा
थोड़ा झुकजा
जल बरसा दे
प्यास बुझा दे

पा जा दूध मलैया
बरसो बादल भैया।

□

चींटी रानी

सुकान्त 'सुमि'

चीटी रानी चींटी रानी
भोली-भाली बड़ी सयानी।
कितना तुम खाना खाती हो
कितना तुम पीती हो पानी ॥

दिन भर में कितना चलती हो
कभी नही तुम थकती हो
आपस में रहती हो मिलकर
नही कभी झगड़ा करती हो ॥

आलस कभी नहीं तुम करती
दिन भर राशन ढोती रहती।
आंधी, वर्षा हो या तूफान
कभी नहीं तुम इनसे डरती ॥

गिर-गिर कर तुम फिर चढ़ जाती
हिम्मत नहीं हारती हो तुम
कभी न हारो जग में हिम्मत,
हमको पाठ सिखाती हो तुम ॥

नहीं चलेगी अब चालाकी

सवाईसिंह शेखावत

काला कौआ उड़कर आया।
दूर कही से रोटी लाया।
बैठ पेड़ पर खानी चाही।
हंसती तभी लोमड़ी आई।
"कौए राजा, मन के मीत।
मुझे सुनाओ मीठे गीत।"
पंजे तले दबा कर रोटी।
कहा काग ने "सुन री चोट्टी।
काऊं ! कांऊं ! कांऊ ! कांऊ !
और बोल क्या राम सुनाऊं ?
रस्ता नाप लोमड़ी काकी,
नही चलेगी यह चालाकी !"

□

बरसात का गीत

नरेन्द्र सांचोहर

गरजे बादल घड़-घड़-धम्म
आई बरखा छम-छम-छम्म

माटी महके सोंधी-सोंधी
पुरवा-पाटी उड़ी औंधी
बिट्टू फिसला धर्-र्-र्-धम्म

गरजे बादल घड़-घड़-घम्म
आई बरखा छम-छम-छम्म

नाचें मोर 'मेह-आओ' कहते
फूल खिलाओ सब के मन के
हिप्-हिप्-हुर्रे, डम-डम-डम्म

गरजे बादल घड़-घड़-घम्म
आई बरखा छम-छम-छम्म

बाहर निकलो मोनू भैया
देखो सर्-सर् चलती नैया
हवा खेलती टिकड़ी-दम्म

गरजे बादल घड़-घड़-घम्म
आई बरखा छम-छम-छम्म

□

दो शिशु गीत

कुन्दनसिंह 'सजल'

हाथी

कितना मोटा ताजा हाथी।
चलता जैसे राजा, हाथी॥

नहीं तड़कता, नहीं भड़कता—
सुनकर गाजा-बाजा, हाथी॥

अपने मालिक से कपड़ों का—
करता नहीं तकाजा, हाथी ॥
युद्ध और बारात सभी मे—
आता काम, लिहाजा, हाथी ॥
बच्चे इसको देख बुलाते—
आजा हाथी, आजा, हाथी ॥

शेर

जंगल में गुर्राता, शेर।
सबको आँख दिखाता, शेर ॥
सभी जगह पर सीना ताने—
निर्भय आता जाता, शेर ॥
सभी देखते हैं सर्कस में—
खूब कमाल दिखाता, शेर ॥
जानवरों का, जंगल का भी—
है राजा कहलाता, शेर ॥
शहरों में, नगरों, गांवों में—
नहीं भूलकर आता, शेर ॥

□

काले बादल

चैनराम शर्मा

काले बादल दो पानी
सूख रही धरती रानी।

उमड़-उमड़ कर छा जाओ
क्यों करते आना-कानी ?

अन्न उगा दो खेतों में
पशुओं को चारा पानी।

कुर्ता हरा करो नभ का
मरुधर की चुन्दड़ धानी।

रीती-रीती सरिता को
बहने दो, तुम मनमानी।

बरस पड़ो मूसल धारा
कर दो पानी ही पानी।

मेघा ! तुम कहलाओगे
जग मे बहुत बड़े दानी ।।

□

नदियाँ

मोती 'विमल'

कल-कल-छल–छल
गाती नदियां।
उछल-कूद मचाती नदिया।
बांधो-सी बध जाती नदिया।
सागर-सी लहराती नदिया।
चौडी-चौडी गहरी नदिया।
बल खाती नहरो मे नदिया।
खेतों में बह जाती नदिया।
गांवो को चमकाती नदिया।
'हरित क्रांति' की थाती नदिया।
मेरे मन को भाती नदिया।

□

फूल

जितेन्द्रशंकर बजाड़

हँसते फूल हँसाते फूल।
सबके ही मन भाते फूल॥

डाली डाली खिल जाते हैं,
मधुमासी मदमाते फूल॥

मधुकर को मधुरस देकर,
सच्ची प्रीत निभाते फूल॥

सब दुःख सहते, पर चुप रहते,
सदा सहज मुस्काते फूल॥

सर्दी, गर्मी, वर्षा सहते,
खुशबू सदा लुटाते फूल॥

सुई और धागे से बिंधते,
कभी नहीं अंसुवाते फूल॥

इतना धीरज रखते तब,
देवों के सिर चढ़ते फूल॥

□

टिंकूजी की योजना

सत्यपाल सिंह

घर में देख चूहों का ऊधम
मम्मी हुई बड़ी हैरान,

कागज-कपड़े कुतर-कुतर कर
करते रोज बड़ा नुकसान।

देख परेशानी मम्मी की
टिंकूजी ने प्लान बनाई,
मोटी-ताजी चितकबरी-सी
रौबदार बिल्ली मंगवाई।

बिल्ली की सुनते ही 'म्यांऊ'
चूहों के दिल धड़क उठे,
जान बचाने किसी तरह से
छोड़ बिलों को भाग उठे।

सफल हुई निज प्लान देखकर
टिंकूजी अति हर्षाये,
मम्मी-डैडी से इनाम में
ढेरों चॉकलेट पाये।

□

कुम्हार

रमेश 'मयंक'

देखो कितना कुशल कुम्हार
मिट्टी से रचता संसार
गोल—गोल जो चाक घुमाता
छोटे—बड़े मटके बनाता
मिट्टी की ईंटें है बनाता
सुन्दर-सा मकान बन जाता

कवेलू से छप्पर ढकाई
ठंडा पानी लाई सुराही

मिट्टी के दीपक बहुत प्यारे
रोशनी देते जग को सारे

देखो कितना कुशल कुम्हार
मिट्टी से रचता संसार

□

छोटू के कारनामे

जितेन्द्र

लेकर कापी पेन एक दिन
भैंस पे जा बैठा छोटू।
हँसा देखकर लेकिन कुछ भी
समझ नहीं पाया मोटू
छोटू बोला, क्यों हँसते हो,
क्या मैं पागल दिखता हूँ?
तुम मे ही मत्र अक्ल नहीं है,
मैं भी बुद्धि रखता हू।
टीचर ने कल यही कहा था
बहुत मार तुम खाओगे।
यदि तुम एक निबंध भैंस पर,
लिख कर नहीं दिखाओगे।

□

मेरी नानी

श्रीमाली श्रीवल्लभ घोष

मेरी नानी प्यारी नानी,
मुझे सुनाती रोज कहानी।

मेरी माँ की माँ है नानी,
सबसे बूढ़ी मेरी नानी।

नानी की नजरें कमजोर,
नहीं सुहाता उसको शोर।

उठ जाती है तड़के भोर,
मुझे उठाती कान मरोर।

खाने को देती है लड्डू,
चढ़ने को लाती काठ का टट्टू।

खूब घुमाता जब मैं लट्टू,
कहती मुझको बड़ा निखट्टू।

मेरी नानी प्यारी नानी,
घर में अच्छी सबसे नानी।

सबसे चतुर है मेरी नानी,
सबको खुश रखती है नानी।

□

शिशु गीत

शिव 'मृदुल'

वन-बागों की रानी परियाँ।
सुन्दर और सयानी परियाँ॥
सावन-सी मस्तानी परियाँ।
सपनों भरी कहानी परियाँ॥

इनके भोले भाले चेहरे।
इनके लम्बे बाल सुनहरे॥

इनके पंख हवा में लहरे।
हँसते बच्चों में आ ठहरे॥

इन्द्रधनुष-सी नीली पीली।
रंग-बिरंगी छैल-छबीली॥
नन्दन वन की रानी परियाँ।
सपनों भरी कहानी परियाँ॥

□

कैसा गरमी का तूफान

अर्जुन 'अरविंद'

निकला सूरज सीना तान
कैसा गरमी का तूफान।

उजली-उजली धूप निकलती,
कितनी सारी आग उगलती,
आती जब मुंहजली दुपहरी
बूढ़े-बच्चे सबको खलती,

उड़ गयी पल में सबकी शान
कैसा गरमी का तूफान।

भूखी बैठी गाय रँभाती,
तन को कितनी प्यास सताती,
साथ! बुलाने पर भी कोई
बदली नहीं बरसने आती,

बार-बार करते सब स्नान
कैसा गरमी का तूफान।

कपड़े तन पर नहीं सुहाते,
एक समय ही खाना खाते,
ताजे फल अच्छे लगते हैं-
ठंडे शर्बत, कुल्फी भाते,

तपती सड़कें और मकान।
कैसा गरमी का तूफान।

□

गुड मॉर्निंग पापा

त्रिलोक गोयल

गुड मॉर्निंग पापा !
गुड नाइट मम्मी !!
आँखों के तारे हैं/टुन्नू और टम्मी ।।
रोते हैं मोती/हँसते हैं गुलाब।
तुतलाये शब्दों में मीठा जवाब ।।
घर की सजावट है, सजीव खिलौने।
जादू से हो जाते यों बड़े/बौने ।।
सुन्दर, सुनहरी सभ्यता की डोरी।
कृपा की थैंक्यू/भूल हुई सॉरी ।।
हमें तो किसी ने कभी नहीं डाँटा।
किसी से शेक हैण्ड/किसी से टाटा ।।

□

चाह

रामनिवास सोनी

पापा ! मेरी वर्षगाँठ पर ला दो ऐसा घोड़ा ।
सरपट सरपट भागे लेकिन दाना खाए थोड़ा ॥
इस पर चढ़ कर पवन वेग से
चंदा के घर जाऊँ ।
मामा जी से अमृत-घट ले
भागा दौड़ा आऊँ ॥
कहीं रात में रुक जाए तो एक लगाऊँ कोड़ा ।
पापा ! मेरी वर्ष गाँठ पर ला दो ऐसा घोड़ा ॥
दीन जनों में अमृत बाँटूं
सुख-सौरभ सरसा दूं ।
भाई-भाई गले मिले
जग का आँगन महका दूं ॥
मानवता के हर दुश्मन को मारूँ एक हथोड़ा ।
पापा ! मेरी वर्ष गाँठ पर ला दो ऐसा घोड़ा
सरपट सरपट भागे लेकिन दाना खाए थोड़ा ॥

□

बरखा

वासुदेव चतुर्वेदी

बादल गरजे, बिजली चमके
छमछम छमछम बरसा पानी
बिछ गई चादर मखमली
गली गली में डोला पानी।

मोती बरसाता आसमान।
धारा-प्यासी जब कुलबुलाती
पसीज जाता दिल बादल का
सरस धारा बरखा बहाती।

सज-धज ले फसलें उग आती।
मोती से झोली भर जाती।
जीवन पा धरती मुस्काती
धूम मचाती बरखा आती।

बरखा से धरती का कण-कण
ले रहा अब है अँगड़ाई।
कल कल छलछल करती आई
फूटी जीवन की तरुणाई॥

वन उपवन हर घर सरसाया
नव जीवन पा तुम मुस्काओ।
फलो फूलो आगे बढ़ते जाओ
सबको ऐसा पाठ पढ़ाओ।

सम्पर्क सूत्र

ष्णकुमार कौशिक, पर्यवेक्षक प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम, नोहर-३३५५२३
त्य शकुन, व्याख्याता, हनुमान हत्था, बीकानेर
ी०एम०राव "राजस्थानी", राज० तहसील पुस्तकालय, प्रतापगढ़ ३१२६०५ (चित्तौड़गढ़)
ानन्द कुरेशी, शिक्षक-सेन्ट पैट्रिक स्कूल, डूगरपुर—३१४००१
मेशचन्द्र "चन्द्रेश", मोहल्ला नीमघटा पो० डीग, भरतपुर
मरनी रॉबर्टस प्र/प्र/रा० मा० वि० सोप वाया शहर जि०स०माधोपुर
श्रीमती वीणा गुप्ता, श्रीराम विद्यालय, उद्योगपुरी, कोटा—४
सुरेन्द्र चपल, प्र/प्र/रा०उ०प्रा० विद्या० लगेत खेडा तह० भीम, उदयपुर
सीताशु भारद्वाज, १३८ डी० विद्या विहार, पिलानी-३३३०३१
दीनदयाल शर्मा 'दिनेश्वर", पुस्तकालयाध्यक्ष रा० मा०विद्या० मक्कासर, श्रीगंगानगर
विशान्त, द्वारा बसन्त लाल हेमराज, पीलीबंगा-३३५७०३, श्री गंगानगर
बसन्ती लाल गुराना, महिला प्राश्रम उ० मा० विद्या० भीलवाडा
भगवतीलाल शर्मा, प्र/प्र-उ० प्रा० विद्यालय रोलाहेडा, चित्तौडगढ़
बसन्ती सोलंकी, प्र/प्र-प्रा० वि० गोपालपुरा प० स० प्रतापगढ़, चित्तौडगढ़
श्याममनोहर व्यास, प्र/प्र-१५ पंचवटी, उदयपुर (राज०)
मुबारक खान "आज़ाद", पो० पनकोशी नागौर-३४१५१६
गौरीशंकर आर्य, कवि कुटीर, घोसहल्ला—३२६५१५, झालावाड़
८. रमेश भारद्वाज, ४११२ चौकडी वालों का मोहल्ला, नसीराबाद
९. इन्दर आउवा, पो० आउवा जिला पाली—३०६०२१
०. अब्दुल मलिक खान प्रेस रोड, गिधी कॉलोनी, भवानी-मंडी—३२६५०२ जि० झालावाड़
१. प्रेम "सबरवत्र" प्र/प्र-रा० मा० वि० खैरवा, पाली
२. शान्तिलाल नीमा, प्र/प्र-रा०उ०प्रा० वि० गंगधर (झालावाड़)
३. सावित्री परमार, पालीवाल भवन, सजानेवालों का रास्ता, चौड़ा रास्ता, जयपुर
४. अरविन्द चूरुवी, व्या०, सोमनाथ दयानन्द मार्ग, चूरू—३३१००१
५. हरसिंह चौहान "ओहरी", ओहरी सदन, काम्य वीथिका, कानोड, उदयपुर

२६. चैनराम शर्मा, व-अ०, मा० विद्या० साकरोदा-गिर्वा उदयपुर

२७. रमन गुप्ता 'व्याख्याता', ज्ञान ज्योति उ०मा० विद्या० श्री करनपुर—३३५०७३

२८. गोपाल कृष्ण "निर्झर", शारीरिक शिक्षक, रा मा० विद्या० कन्नौज जि० चित्तौड़गढ़

२९. प्रेम भटनागर, ३५ फतेहपुरा (ओल्ड) हस ओपन स्कूल के पास, उदयपुर

३०. सुकान्त "सुमि" व्याख्याता, १३ बी ब्लाक, श्री करनपुर—३३५०७३, श्री गंगानगर

३१. सवाई सिंह शेखावत, सहायक सम्पादक, राजस्थान विकास, विकास विभाग, सचिवालय,

३२ नरेन्द्र सांचीहर, रा०उ०मा०विद्या० राजसमन्द, उदयपुर

३३ कुंदनसिंह सजल, उदयनिवास रायपुर (पाटन), सीकर

३४. मोती विमल, प्र/अ मा० वि० जाशमा

३५. जितेन्द्र शंकर बजाड़, शिक्षक, PO भीचोर—३१२०२२, चित्तौड़गढ

३६. सत्यपालसिंह, व्याख्याता, रा० सेठ कि० ला० का० उ० मा० विद्यालय नागौर (राज०)

३७. रमेश "मयंक", व० अ०, रा०उ०मा० वि० बस्सी जि० चित्तौड़गढ

३८ जितेन्द्र, व्याख्याता, श्री गो० जैन उ० मा०विद्या० छोटी सादड़ी

३९. श्रीमाली श्रीवल्लभ घोष, सुगन्धगली, ब्रह्मपुरी, जोधपुर

४०. शिव मृदुल, बी ८ मीरानगर, चित्तौड़गढ

४१. अर्जुन "अरविन्द", काली पल्टन रोड, टोंक

४२. त्रिलोक गोयल, व्याख्याता, अग्रवाल उ० मा० विद्या० अजमेर

४३ रामनिवास सोनी, कालीजी का चौक, लाडनूं (नागौर)

४४ वासुदेव चतुर्वेदी, उ० मा० विद्या० लाखेरी, बून्दी